५१ श्रेष्ठ बाल कहानियाँ

कन्हैया लाल 'सरस'

जवाहर पुस्तकालय, मथुरा

कन्हैया लाल 'सरस'

५१ श्रेष्ठ बाल कहानियाँ

जवाहर पुस्तकालय

सदर बाजार

मथुरा-281002

प्रकाशक : जवाहर पुस्तकालय, मथुरा/लेखक : कन्हैयाल 'सरस'

मूल्य : बारह रुपये/प्रथम संस्करण : दीपावली १९८३

मुद्रक : पचौरी प्रेस, सदर बाजार, मथुरा

प्रिय पंकज, पुष्पेन्द्र

शरद, रितेन्द्र को

प्यार की

फुलवारी

दूसरों को हानि न पहुंचायें

बात पुराने जमाने की है। एक जंगल में एक घोड़ा और एक गाय साथ-साथ बड़े प्रेम से रहते थे। जंगल भी पूरा हरा-भरा था। घास की कोई कमी न थी। अत: वे दोनों प्रेम से चरते-चरते काफी दूर तक निकल जाते थे। साथ-साथ, उठते-बैठते, बातें करते थे।

एक बार घोड़े को सूझा कि गाय को तंग करना चाहिये। जिससे कम से कम वह समझ सके कि घोड़ा भी कोई साधारण जानवर नहीं होता।

एक दिन वह सोचते-सोचते एक आदमी के पास गया और उससे बोला—"आप नहीं जानते कि गाय बढ़िया दूध देती है। यदि उसे आप पकड़ लें तो आपको दोनों वक्त दूध मिल सकता है।"

घोड़े की बात आदमी को जंची, किन्तु वह बोला—"गाय को पकडूंगा कैसे ? वह तो बहुत तेज दौड़ती है। उसके सींग भी लम्बे होते हैं।"

घोड़ा कहने लगा—"भई कैसे आदमी हो तुम जरासी गाय से घबरा गये। वह भला मुझसे भी तेज दौड़ सकती है कहीं। आप मेरी पीठ पर बैठ जायें और पकड़लें।"

घोड़े की बात आदमी को अब तो और भी अच्छी लगी अत: वह घोड़े की पीठ पर बैठ कर गाय के पीछे दौड़ने लगा। थोड़ी ही देर में उसने गाय पकड़ ली।

जिस घोड़े ने गाय को आदमी को पकड़ने को कहा था स्वय वह भी आदमी का दास बन गया। गाय के साथ ही। 'दूसरों को हानि पहुँचाने वाले की स्वयं हानि होती है—' किसी ने ठीक ही कहा है।

नकल का फल

पुराने समय की बात है। अरब देश में हाफिज नाम का एक व्यापारी रहता था। वह बड़ा महनती था। एक बार उसने सुना कि इथोपिया नामक देश के लोगों के पास चाँदी बहुत है। अतः उसे इथोपिया जाकर व्यापार करने की बात सूझी।

हाफिज, एक बार अपने सैकड़ों ऊँटों को प्याज से लाद कर इथोपिया के लिए चल पढ़ा। कई दिन की मंजिल तय करके वह इथोपिया जा पहुँचा। इथोपिया के लोगों ने कभी भी प्याज न खाया था। अतः जब हाफिज ने अपने ऊँटों पर लदे प्याज उनको दिखलाये तो इथोपिया निवासी उन्हें चख कर मारे खुशी के झूम उठे।

इथोपिया वासियों ने हाफिज के सारे ऊँटों की प्याज खरीदली और बदले में उसके ऊँट चांदी के बराबर तौल दिये। चांदी, प्याज के बदले मिली अतः व्यापारी फूला न समाया और काफी धनवान बनकर अरब लौट आया।

जब हाफिज के मालामाल होने का समाचार एक अन्य अरब व्यापारी इब्राहीम ने सुना तो वह जल गया। अब उसने भी इथोपिया जाने की ठानी। उसने प्याज से भी बढ़िया वस्तु लहसुन अपने सैकड़ों ऊँटों पर लादी और इथोपिया जा पहुँचा।

इथोपिया के लोगों ने जब लहसुन चखी तो और भी प्रसन्न हुए। इथोपिया वासियों ने इब्राहीम का सारा लहसुन तो ले लिया, किन्तु बदले में क्या दे ? यह प्रश्न उठा।

उन्होंने विचार किया कि चाँदी तो बहुत है किन्तु चांदी से भी बढ़िया चीज प्याज उनके पास है। अतः लहसुन के बदले में इब्राहीम के ऊँट उन्होंने हाफिज वाले प्याजों से लाद दिये। चांदी नहीं दी। बेचारा इब्राहीम अपने भाग्य को रोता हुआ, अरब लौट आया। उसे नकल का फल मिल गया।

संगीत और डाकू

दक्षिण भारत में एक रियासत थी ट्रावनकोर। वहाँ तब तिरूनालू नामक राजा, राज्य करते थे। उनके दरबार में वडिवेलु नाम के एक संगीतज्ञ रहते थे। उनका नाम देश भर में फैला था।

संगीत में उनकी भारी रुचि थी। वडिवेलु एक दिन संगीत में आत्मविभोर हो गये। वे दरबार में नहीं जा सके। वडिवेलु का दरबार में न आना राजा तिरूनालू को अच्छा नहीं लगा। अगले दिन वडिवेलू को दरबार में बुलाकर राजा ने डांटा। उन्हें अपनी रियासत से भी निकाल दिया। मंत्रियों ने राजा को बहुत समझाया। किन्तु वे नहीं माने।

वडिवेलु भी स्वाभिमानी थे। वे राजा के सामने गिड़गिड़ाये नहीं। वे अपना थोड़ा सा सामान बाँध कर चल पड़े। साथ में उनका वेला भी था। चलते-चलते जब वे थक जाते, तो वेला बजाकर अपनी थकान दूर कर लेते।

काफी दूर चलने के बाद एक घना जंगल आ गया। वडिवेलु जब उसे पार कर रहे थे, तभी कुछ डाकुओं ने उन्हें आ घेरा। उनका सारा सामान छीन लिया। वडिवेलु ने डाकुओं से प्रार्थना की 'भाइयो ! मेरा तुम सब कुछ ले जाओ, पर वेला लौटा दो। क्योंकि संगीत मेरा प्राण है।

डाकुओं को दया आ गई। उन्होंने वेला वडिवेलु को लौटा दिया। वडिवेलु डाकुओं के पास बैठ गये। और वेला बजाकर

गाने लगे। वेला की आवाज और वडिवेलु का गाना, डाकुओं को बहुत अच्छा लगा। उन्हें अपना भी ध्यान न रहा। जब गाना बन्द हुआ तो डाकुओं को पश्चाताप हुआ।

डाकुओं ने वडिवेलु का सारा सामान लौटा दिया। और जंगल से बाहर तक स्वयं छोड़ आये। उनके पैर छुए और किसी को न लूटने की प्रतिज्ञा भी की। जब यह बात राजा तिरनालू ने सुनी तो उसे दुःख हुआ। फिर राजा ने ससम्मान संगीतज्ञ को वापिस बुला लिया और क्षमा मांगी।

●

सत्य और शक्ति

बगदाद में एक संत रहते थे। उनका नाम हंबल था। वे सदाचारी और सत्य बोलने वाले थे। झूठी बातें उन्हें बुरी लगती वे धर्मान्धों की बातें जनता को बताते थे।

संत हंबल की यह बात खलीफा तक पहुँची। खलीफा संत की बातों को सुनकर नाराज हुए। अतः एक दिन उन्हें पकड़वा कर अपने न्यायालय में बुला लिया। संत हंबल खलीफा की क्रूरता पर क्षुब्ध थे। वे असमंजस में भी थे।

जब संत हंवल थोड़ी देर वहाँ खड़े रहे तो एक सिपाही ने उनके कान में कहा—'हजरत'

"क्या है ?" संत ने कहा।

"आज सच्ची वीरता दिखलाने का दिन है और आप परेशान नजर आते हैं ! मुझे दुःख है कि आप पर कुरान का अपमान करने का आरोप लगाया गया है।" सिपाही ने कहा।

"हाँ" संत ने हामी भरी।

"आपने तो कुरान की शिक्षायें दी हैं ?" सिपाही ने कहा।

"हाँ" संत ने फिर हामी भरी।

"आपको परेशान नहीं होना चाहिए। आप तो सत्यवादी हैं ! देखो एक बार मैंने चोरी की थी। तो खलीफा ने एक हजार कोड़े की सजा सुनाई थी। सचमुच मैं चोर था। फिर भी मैंने चोरी स्वीकार नहीं की ! कोड़ों की मार सहकर भी मैं चोर नहीं बना। आखिर मुझे छोड़ दिया गया। जब मैं झूंठ के लिए, अपने कलेजे को इतना मजबूत कर सकता था, तो फिर आप सत्य से डरते हैं ?

संत हंवल को सिपाही की सीख बहुत अच्छी लगी। उनका 'भय का भूत' जाने कहाँ चला गया। उन्हें अन्धकार में भी प्रकाश की किरण दिखलाई देने लगी। वे बोले—

"सचमुच तुम ठीक कहते हो। तुमने समय पर मुझे जगा दिया है। मैं तुम्हारा सदैव आभारी रहूँगा।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं हजरत किन्तु……" कह कर सिपाही चला गया।

उस दिन, रात भर संत को जेल में रखा गया। वे बड़ी गहरी नींद सोये। अब उनके मन में सत्य के प्रति भारी उमंग थी। बड़े सवेरे सिपाही ने उन्हें देखा तो वे गहरी नींद में सो रहे थे। संत को जगाते हुए सिपाही बोला—

"आप को नींद कैसे आगई जबकि आप तो दण्डित होंगे।"

"हाँ" मात्र कह कर सन्त मुस्कराये।

कुछ समय बाद संत को खलीफा के यहाँ फिर हाजिर किया गया। खलीफा ने संत से कई प्रश्न पूछे। सबके जवाब उन्होंने बेधड़क होकर दिये। वे सोच चुके थे कि मृत्यु-दण्ड से अधिक और क्या मिलेगा।

दूसरे ही क्षण खलीफा ने एक हजार बेंत संत में लगाने का आदेश दे दिया। किन्तु संत आदेश को सुनकर दुखी नहीं हुए। नौकरों द्वारा बेंत बरसाये जाने लगे। संत बेंतों के मारे बेहोश हो गये। किन्तु झुके नहीं। तभी खलीफा उधर आ निकले। अपनी गलती स्वीकार करते हुए संत से क्षमा माँगने लगे। सन्त ने बेहोशी की अवस्था में खलीफा को क्षमा कर दिया। किन्तु थोड़ी ही देर बाद वे मर गये। खलीफा अपने किये पर पछताता रहा। उसने सन्त की सत्यता को पहँचाना। किन्तु जब सन्त के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। ●

राज कवि का चुनाव

उन दिनों धारा नगरी में राजा भोज का शासन था। एक बार उन्हें राज कवि का चुनाव करने की बात सूझी। राजा भोज ने अपने प्रधान मंत्री बैताल से विचार-विमर्श करके राज कवि के चुनाव के सम्बन्ध में घोषणा करवा दी।

राजा भोज की यह घोषणा जंगल की आग की तरह सम्पूर्ण राज्य में फैल गई। निश्चित तिथि से पूर्व ही कविगण धारा नगरी जा पहुँचे। कवियों के ठहरने तथा खाने-पीने का प्रबन्ध राज्य की ओर से पूर्व ही कर दिया गया था।

नियत समय पर कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। राज कवि का चुनाव राजा भोज को स्वयं करना था। कवि-सम्मेलन के दौरान कवि गण एक-एक करके मंच पर आते और अपनी कविताओं का प्रभाव श्रोताओं पर छोड़ते।

इस कवि-सम्मेलन में क्रमशः वीर, शृङ्गार वीभत्स सहित अनेक रसों की कवितायें कही गईं। लोगों की नजरें राजा भोज की ओर लगी हुई थीं। कवि सम्मेलन समाप्त हो गया किन्तु राज-कवि का चुनाव न हो सका।

रात के समय राजा भोज वेष बदलकर घूमने के लिए निकले। घूमते-घूमते वे एक पर्ण कुटी के सामने जाकर रुके, जहाँ एक कवि साहित्य सृजन में तल्लीन थे।

राजा ने पूछा—तात इतनी रात गये सभी विश्राम करते हैं और आप अभी तक जाग रहे हैं। युवा कवि ने उत्तर दिया—

'राजन् जब अपने राज्य की राजा भोज को इतनी परवाह है.... तो क्या एक कवि राज्य के लिए रात में कुछ भी नहीं कर सकता है ?

राजा ने कहा—'रक्षा मेरा कर्त्तव्य है।'

युवा कवि ने कहा—'राज्य के प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है।' अगले ही दिन इस कवि को कवि-भास्कर की पदवी से विभूषित कर दिया गया।

●

श्रद्धा और विनम्रता

किटागाकी नाम का एक बालक धर्म-गुरु मेइजी के पास पढ़ता था। वह बहुत गरीब था। किन्तु मेइजी ने उसे अपने बालक की तरह से पढ़ाया था। बालक किटागाकी भी बहुत होनहार था। बड़ा होकर वह क्योटो राज्य का राज्यपाल बना।

एक दिन किटागाकी, अपना परिचय पत्र लेकर अपने धर्म-गुरु मेइजी के पास गया। परिचय पत्र पर लिखा था—"राज्यपाल किटागाकी क्योटो राज्य।"

यह परिचय पत्र उसने अपने गुरु के शिष्य के हाथों में थमा दिया। 'और स्वयं प्रतीक्षा करने लगा। संत मेइजी ने कार्ड एक ओर रख दिया और बोले—"मुझे इन महाशय से कोई काम नहीं है। और न इनसे मिलने की ही आवश्यकता है। जाओ उनसे कह दो कि आप यहाँ से जा सकते हैं।"

शिष्य ने वापस आकर सन्त के शब्द ज्यों के त्यों कह दिये। एक बार तो किटागाकी मारे घमण्ड के क्रुद्ध हो गया। किन्तु थोड़ी ही देर में उसे अपने घमण्ड का ध्यान आया। वह विचारने लगा—महापुरुषों के पास श्रद्धा और विनीत भाव से जाना चाहिये। सन्त के न मिलने का कहीं यही कारण तो नहीं?" अतएव किटागाकी ने दूसरा परिचय पत्र निकाला। इस बार उसने अपने परिचय-पत्र में से "राज्यपाल क्योटो राज्य" को काट दिया। इस बार केवल नाम रह गया। कार्ड शिष्य को देकर कहा "दुबारा कष्ट कीजिये।"

शिष्य दुबारा परिचय पत्र लेकर पहुँचा। कार्ड पर निगाह डालते ही सन्त मेइजी बोले—"अच्छा, तो किटागाकी आया है। अरे उससे मिलने की तो भारी इच्छा थी। जाओ जल्दी बुला लाओ।

राज्यपाल किटागाकी ने सन्त से अन्दर जाकर क्षमा मांगी। सन्त ने मुस्कराते हुए कहा—"शिष्य सदैव शिष्य रहता है, वह पद नहीं !" गुरु और शिष्य दोनों अति प्रसन्न थे। शिष्य को यह प्रेरणा एक सम्राट बनाने में सफल हुई।

★

लोहे के टोप में पानी

ईरान में एक बादशाह रहता था। जिसका नाम नादिरशाह था। वह बड़ा साहसी और क्रूर था। किन्तु उसे व्यर्थ का दिखावा पसन्द न था। सादगीपूर्ण जीवन उसका विशेष गुण था।

एक बार वह करनाल के मैदान में, मुहम्मदशाह की सेना को पराजित करके दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पहुँचकर दोनों बादशाह आपस में बातचीत कर रहे थे। तभी नादिरशाह को प्यास लगी। उसने मुहम्मदशाह से पानी पीने की इच्छा व्यक्त की। नादिरशाह मुगल बादशाहों की थोथी शान से परिचित था।

नादिरशाह के द्वारा पानी पीने के लिए मांगा गया था। किन्तु उधर तो नगाड़ बजने शुरू हो गये। जैसे कि कोई उत्सव होने जा रहा हो। नादिरशाह इस बेतुकी बात को न समझ सका।

थोड़ी ही देर बाद दस-बारह सेवक उपस्थित हो गये। और कई नवयुवती सेविकाएं भी। किसी के हाथ में रूमाल था। तो किसी के हाथ में खासदान! दो तीन सुन्दरी-सेविकायें चाँदी के बड़ थाल को लेकर आगे बढ़े। थाल में माणिक का कटोरा जल से भरा था। ऊपर से अन्य दो सेवक कपड़े से उस परात को ढके हुए बराबर चल रहे थे।

नादिरशाह की समझ में यह नाटक नहीं आया। वह घबरा गया। सोचने लगा—"माँगा पानी था यह क्या तमाशा होने जा रहा है?" उसने मुहम्मदशाह से पूछा—"यह सब क्या हो

रहा है ?" मुहम्मदशाह ने कहा—"शाहे ईरान को पानी लाया जा रहा है।" अब तो नादिरशाह का बुरा हाल था। वह बोला—"मैं ऐसा पानी नहीं पीता।" मुहम्मदशाह घबरा गया। नादिर ने अपने भिश्ती को आवाज लगाई।

भिश्ती हाजिर हुआ, नादिर ने अपना लोहे का टोप उतारकर भिश्ती से पानी भरवाकर प्यास बुझाई और कहा—यदि हम हम भी तुम्हारी तरह पानी पीते तो ईरान से यहाँ तक न आ पाते…इस पर मुहम्मदशाह काफी शर्मिन्दा हुआ।

★

अभिमान का फल

उन दिनों कलिंग राज्य के पर्णियाँ नामक गाँव में एक शिल्पकार निवास करता था। शिल्पकार का नाम चुंक था। चुंक की एक अत्यन्त रूपवती पुत्री थी, जिसका नाम देवसी था।

देवसी कोई साधारण रूपवती न थी। उसके अनुपम सौन्दर्य की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। देवसी को प्राप्त करने के लिए न केवल सामन्त कुमार ही बल्कि कलिंग के राजकुमार तक लालायित थे।

देवसी को अपने अद्‌भुत सौन्दर्य का बड़ा अभिमान था। बड़ों-बड़ों को वह उँगली पर नचाती थी। सुन्दर से सुन्दर युवक भी उसे पसन्द न आते थे।

एक बार एक सुन्दर युवक पर्णियाँ गाँव से गुजरा किन्तु रात हो जाने के कारण वह चुंक के यहाँ ही ठहर गया।

चुंक ने समझा कि यह भी कोई ऐसा युवक है जो देवसी का हाथ माँगने आया है। ठहरने के दौरान देवसी ने उसे कई बार देखा किन्तु वह पसन्द न आया। जबकि युवक का विवाह करने का कोई इरादा नहीं था।

अगले रोज चुंक ने धनंजय नामक इस युवक को अपने द्वारा निर्मित एक मूर्ति दिखलाई। धनंजय ने उसकी सराहना की। पास ही खड़ी अपनी कन्या का भी उसने परिचय दिया।

युवक के मुंह से सहसा ही निकल गया—'मैंने तुम्हारे विषय में सब कुछ सुन रखा है, 'यौवन केवल चार दिन का मेला है।' वह फिर बोला—'मैं गलत स्थान पर आ गया।' वह अपना सामान उठाकर चल पड़ा। देवसी का अभिमान चकनाचूर हो गया। वह उसे पाने के लिए तड़प उठी किन्तु धनंजय तब तक जा चुका था।

असली उत्तराधिकारी

प्राचीन समय में बिहार में जमुनादास नाम का एक व्यापारी रहता था। जब बिहार में उसका व्यापार ठप्प पड़ गया तो वह गुजरात में जाकर व्यापार करने लगा। वहाँ उसका व्यापार जम गया।

जमनादास का एक लड़का था जिसका नाम अशोक था। अशोक नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ता था।

कुछ दिन बाद जमुनादास की पत्नी अमली का देहान्त हो गया। अमली के विरह में जमुनादास ने भी प्राण त्याग दिये। मरने से पहले जमुनादास ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने पुत्र अशोक के नाम कर दी। और अशोक के नालन्दा से लौटने तक संपत्ति की व्यवस्था एक न्यायाधीश को सौंप दी।

अशोक को जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह रोता-कलपता गुजरात की ओर चल पड़ा। रास्ते में अशोक को एक लड़का और मिला। उस लड़के ने अशोक से सहानुभूति दिखलाकर उसका मित्र बन गया।

जब अशोक और उसका मित्र वह लड़का दोनों घर पहुँचे और रोने लगे। अशोक का मित्र भी अपने को अशोक बतलाकर अशोक के पिता का असली पुत्र होने का दाबा करने लगा। वह बड़ा चालाक था।

दोनों को रोते देख न्यायाधीश चकराया कि असली उत्तराधिकारी किसे घोषित करे ? उसने एक युक्ति निकाली। जमुना-

दास का एक बड़ा चित्र मँगवाकर कहा जिसका निशाना सही लगेगा वही उत्तराधिकारी होगा।

तीर कमान पहले अशोक के मित्र को देकर कहा गया। उसने तुरन्त सही निशाना लगा दिया। जब अशोक से कहा गया तो उसने तीर कमान को छुआ भी नहीं, बल्कि अपने पिता के चित्र से लिपटकर फूट-फूटकर रो पड़ा और कहने लगा—चाहे मेरी संपत्ति मुझे न मिले पिता को तीर न मारूँगा।

न्यायाधीश ने समझकर तुरन्त अशोक को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया और उसके मित्र को जेल भेज दिया।

हैनर्स का त्याग

अमेरिका के न्यूयार्क नगर में एक बालक रहता था। तब उसकी उम्र सत्रह-अठारह वर्ष की थी। वह बड़ा साहसी था।

एक बार उसे हड्डी की टी० बी० हो गई। बीसियों डॉक्टरों को दिखलाया किन्तु कुछ भी फायदा न हुआ। बेचारा गरीब तो था ही। नौकरी भी करता और उपचार के पैसे भी चुकाता। एक साथ कई समस्यायें उसके सामने आ गईं। वह हताश हो गया। उसने रोग को दबाये रखने के लिए बिना डॉक्टरों की आज्ञा के गलत दवाइयाँ लेता रहा। इस अपराध में वह पकड़ा गया। उसको छः माह की सजा हो गई। उसका मन अशान्त हो गया।

जब वह जेल में पहुँचा तो उसका दृष्टिकोण बदल गया। उसने देखा छोटी-छोटी बातों पर लोग कितना बड़ा अपराध कर बैठते। उनमें कोई खूनी था तो कोई चोर !

हैनर्स ने इन बातों पर विचार किया। और सोचा कि ये सब अपराधी क्यों बने ? काफी सोच-विचार के बाद एक दिन उसने जेलर से कहा—"मैं यहाँ स्कूल चलाना चाहता हूँ। यह एक प्रयोग होगा ?"

जेलर ने पूछा—"क्या-क्या पढ़ाओगे ?" हैनर्स ने जबाब दिया—"अक्षर ज्ञान से लेकर अपराध बचाने तक" जेलर ने उसकी सूझ को ऊँचे अफसरों को लिखा। आखिर हैनर्स को स्कूल चलाने की अनुमति मिल गई।

जेल के कुछ कमरे स्कूल बन गये। पहले ही दिन १० प्रतिशत उपस्थिति रही। पहली कक्षा में उसने पढ़ाया—"अपराधी होने

से पहले सभी लोग अच्छे होते हैं। यदि अच्छा व्यक्ति लालच में आकर बुरा बन सकता है। तो वह अपना आचरण सुधार कर पुनः अच्छा भी बन सकता है।" हैनर्स के त्याग का जेलियों पर असर हुआ। वे अब सुधर चुके थे।

जब हैनर्स जेल से निकला तो उसे राज्य सरकार ने अपने शिक्षा विभाग में सम्मानित पद दिया। और बाद में वह निदेशक हैनर्स के नाम से विख्यात हुआ।

⊙

ईमानदारी का पाठ

जापान के टोक्यो नगर में एक बालक रहता था। उसका नाम सियाओ था। उसके पिता एक स्कूल में अध्यापक थे। बालक सियाओ का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था। वह अपने पिताजी से सदैव दुकान खुलवाने के लिए कहता। किन्तु उसके पिताजी उससे कहते पहले पढ़ना चाहिये फिर कुछ करना चाहिये।

बालक कुछ जिद्दी स्वभाव का था। इसलिये उसके पिताजी उसे एक दिन एक कपड़े के दूकानदार के पास ले गये। यह दूकानदार उनका मित्र था।

दूकानदार से सियाओ के विषय में उन्होंने बातचीत की। दूकानदार बोला—"सियाओ अभी छोटा है ? इस पर सियाओ ने कहा—"सिर्फ पढ़ने के लिए छोटा हूँ दूकान के लिए नहीं।" दूकानदार को सियाओ की बात जंच गई और अपनी दूकान पर रख लिया।

सियाओ कपड़े का काम सीखने लगा। वह बड़ी तन्मयता से काम करता दूकानदार भी प्रसन्न था। एक दिन एक महिला अपने लिए साड़ी खरीदने के लिए आई। बालक सियाओ ने उसे कई साड़ियाँ दिखलाई। एक साड़ी जो अन्दर से कटी हुई थी। महिला को पसन्द आ गई।

महिला बोली—"इसका दाम बताओ। बालक के सामने ही दूकानदार भी बैठा था। वह सोच रहा था। देखें सियाओ क्या दाम बताता है। सियाओ ने बजाय दाम बताने के कहा—"बहनजी ! आप जिस साड़ी को पसन्द करती हैं। वह तो कटी है। आप कोई और चुन लीजिये।

इस बात पर महिला तो प्रसन्न हुई। वह साड़ी लेकर चली गई किन्तु दूकानदार सियाओ पर बरस पड़ा – "कहीं ऐसे कपड़े बिकते हैं फिर कटी साड़ी कौन खरीदेगी। दूसरे ही दिन दूकान-दार ने उसके पिता को बुलवाकर सारी बात बता दी। इस पर पिता बोला—"इससे अधिक तो और कुछ नहीं हुआ।" नहीं—दूकानदार ने कहा—तब सियाओ के पिता ने कहा—"मेरा बेटा ठीक दूकानदार बन गया है अब आप रहने दीजिये। वह ईमान-दारी का पाठ पढ़ चुका है।

सियाओ अपने पिता के साथ चला गया। पिता ने एक कपड़े की दुकान खुलवा दो। यही लड़का सियाओ अपनी ईमान-दारी के बल पर जापान का प्रसिद्ध उद्योगपति और कपड़े का व्यापारी बना।

●

धर्म अंधों का हाथी

पुराने समय में श्रावस्ती नामक नगरी में चन्द्रचूड़ नामक राजा राज्य करते थे। वे धर्मों की परस्पर विरोधी बातों से क्षुब्ध रहते थे।

एक बार श्रावस्ती में महात्मा गौतम बुद्ध पधारे। राजा चन्द्रचूड़ ने उनका काफी सम्मान किया। एक अवसर पर राजा ने महात्मा बुद्ध से पूछा—"भगवान ! धर्मों में परस्पर विरोधी बातें क्यों हैं ?"

भगवान बुद्ध ने उस वक्त तो इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु सुबह आने के लिए अवश्य कह दिया।

सुबह नियत समय पर राजा भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। वहाँ एक मोटे-तगड़े हाथी को देख कर वे दग रहे गये। हाथी के साथ-साथ वहाँ पर कई अंधे व्यक्ति भी मौजूद थे।

भगवान बुद्ध ने राजा से कहा—"देखो अब तुम्हारे प्रश्न का समाधान हो जायेगा। फिर वे हाथी के पास पहुँच कर अंधों से बोले—"भाइयों ! क्या तुमने हाथी देखा है ?"

'नहीं भगवन !' सभी ने इन्कार किया। इसके बाद एक-एक करके सब अंधों को हाथी दिखलाया गया। फिर पहले से पूछा—'हाथी कैसा होता है ?' उसने उत्तर दिया—'सूप जैसा', क्योंकि उसके हाथ कान आये थे।

दूसरे से पूछा तो उसने कहा—'पत्थर जैसा।' क्योंकि वह सिर को टटोल सका था। तीसरे ने खम्बे जैसा बताया क्योंकि उसके हाथ पैर आये थे।

तब भगवान बुद्ध ने कहा—विभिन्न धर्म अपनी-अपनी बात करते हैं, जैसे ये अन्धे कर रहे हैं। धर्म का समन्वय होना चाहिए। राजा का समाधान हो गया।

असली-नकली का अंतर

एक बार एक सेठ ने अपने खजाने में से खोटे सिक्कों को असली सिक्कों से अलग करने का फैसला किया।

जब सेठ ने सिक्कों की जाँच शुरू की तो खोटे सिक्के घबराने लगे। आपस में वे बातचीत करने लगे कि अब तो हमारे बुरे दिन आ गये हैं। हमें, सेठ छाँट-छाँटकर अलग करेगा और फिर तुड़बा देगा। कोई तरकीब सोचो,

इन खोटे सिक्कों में एक छोटा सिक्का बड़ा नटखट और चालाक था। उसने कहा—"भाइयो! अगर हम लोग बढ़िया-बढ़िया चमकने लगें तो सेठ पहचान न कर पायेगा। और अपना काम बन जायेगा।'

छोटे, खोटे सिक्के की बात सबको जंची अतः वे दिखावटी चमकने लगे। सेठ ने जाँच शुरू की तो चमक के कारण वे पुनः असली सिक्कों के साथ तिजोरी में पहुँचने लगे।

सेठ के द्वारा गिनते-गिनते एक सिक्का जो कि खोटा था पत्थर पर गिर पड़ा। सेठ चकराया—चमक तो अच्छी है पर आवाज खोटे जैसी। उसे तुरन्त ही शंका हो गई।

सेठ ने सब सिक्कों को तिजोरी में से पुनः निकाला और अब उन्हें नीचे पड़े पत्थर पर बजा-बजा कर जाँच करनी शुरू की।

खोटे सिक्कों की ऐसी दुर्दशा देखकर एक असली सिक्का हँस कर बोला - "मेरे प्यारे खोटे दोस्तो! दिखावट और बनावट थोड़े ही समय तक ही चल सकती है। असली और नकली का अन्तर तो जरूर पकड़ में आता ही है। चालाकी कब तक चलेगी।"

खोटे सिक्के उदास हो गये।

बखतसिंह का न्याय

हमारे देश के राजस्थान प्रान्त में एक रियासत थी। उसका नाम नागौर था। उन दिनों वहाँ बखतसिंह नाम के राजा राज्य करते थे। वे अपने न्याय के लिए सम्पूर्ण राजपूताना में प्रसिद्ध थे।

अँग्रेजों का तब जमाना था। फिर भी वे कोरे कानून को जनता पर नहीं लादते थे। उनकी ख्याति जब जयपुर के राजा ने सुनी तो, उनकी परीक्षा लेनी चाही।

परीक्षा के लिए जयपुर के राजा ने दो सिपाहियों को सिखा-बुझा कर नागौर भेजा।

जयपुर के सिपाही मंजिल तय करते हुए नागौर पहुँच गये। बड़े सबेरे ही वे वहाँ के बाजार में एक हलबाई की दूकान पर जा बैठे। हलवाई को सिपाहियों से कोई परेशानी न थी। क्योंकि वे वेष बदल कर बैठे थे।

सुबह से लेकर शाम तक हलवाई जो भी बिक्री करता रहा, उसके पैसों की जाँच वे करते रहे। जब शाम को हलवाई घर जाने लगा तो दोनों चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे—"इस आदमी ने हमारे पैसे छीन लिये हैं! हम परदेशी हैं। रास्ते में एक सिपाही मिला—'उसने हलवाई से पैसों की पोटली छीन ली" वह जयपुर के सिपाहियों (वेष बदले) से बोला—"आप लोगों के कितने पैसे हैं?

जयपुर के सिपाहियों ने पैसे बतला दिये। जब सिपाही ने गिने तो उतने ही थे जितने कि जयपुर के सिपाहियों ने बतलाये थे। तब नागौर का सिपाही बोला—"अब तुम बताओ

(हलवाई से)" हलबाई को अपने पैसों का हिसाब न लगाने के कारण कोई पता न था।

इस बार नागौर का सिपाही बोला—"भाई पैसे वेशक आप लोगों के ही हैं किन्तु जब तक महाराजा का फैसला नहीं होगा। ये पैसे तुम्हें नहीं मिलेंगे।

मामला राजा बखतसिंह के दरबार में पेश हुआ। बखतसिंह ने दोनों पर दृष्टि डाली और कई प्रश्न किये। फिर मंत्री को एक कढ़ाई लाने की आज्ञा दी। मंत्री नौकर की सहायता से कढ़ाई ले आया। उसमें पानी भरा गया और नीचे आग जला दी गई। पूरा दरबार खचाखच भरा था।

उबलती कढ़ाई में बखतसिंह ने पैसे डाल दिये। फिर पैसे निकलवाकर हलवाई को देते हुए कहा—"लो तुम्हारे पैसे लो" इस पर सभी चकित थे। तभी प्रधानमंत्री ने कहा—"लोग यह जानना चाहते हैं कि यह आपने कैसे जान लिया ?"

तब राजा बोला—"आप लोग अब भी न समझ सके ! अरे भाई हलवाई दिन भर मिठाई का काम करता है। घी का काम करता है। पैसे गर्म पानी में डालते ही घी ऊपर आ गया तब पैसे हलवाई के हुए कि नहीं।"

बखतसिंह के न्याय पर जयपुर के सिपाही स्तंभित थे। उन्होंने जब यह बात जयपुर के राजा को बतलाई तो वह आश्चर्य में पड़ गया।

क्या सच ?

मिथिला नरेश जनक को एक बार बड़ा भयंकर स्वप्न आया। स्वप्न के दौरान, किसी शत्रु राजा ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। मिथिला के सैनिकों ने डट कर मुकावला किया किन्तु वे हार गये। राजा जनक को पकड़ लिया गया।

शत्रु राजा ने जनक को मृत्यु दण्ड तो नहीं दिया किन्तु सब कुछ छीन कर निर्वासित कर दिया। यह भी घोषणा करवा दी कि मिथिला का कोई भी नागरिक जनक को आश्रय नहीं देगा।

राजा जनक ने भिखारी की हालत में मिथिला की सीमा से बाहर प्रस्थान किया। वे भूखे थे, एक स्थान पर जहाँ अन्न बँटना बन्द हो चुका था, अन्न के लिए गिड़गिड़ाने लगे।

बहुत मुश्किल से उन्हें थोड़ा सा चावल मिला। चावल लेकर जैसे ही वे खाने के लिए उद्धत हुये किसी चील ने झपट्टा मार कर सारा चावल बिखरा दिया। जनक, मारे भूख के चीख उठे।

स्वप्न में जनक की चीख इतनी तीव्र थी कि सारा रनिवास जाग पड़ा। सुबह होते ही दरवारियों से जनक ने यह प्रश्न किया—'यह सच या वह सच ?'

दरबार में अष्टावक्र भी मौजूद थे। उन्होंने समाधान किया–'स्वप्न में आपके पास रानियाँ और महल थे ?' जनक ने कहा—'नहीं, मैं भिखारी था।'

अष्टावक्र ने फिर कहा—जागने पर उक्त सभी आपके पास थे ?' या फिर आपका भिक्षुक वेष, बाँटने वाला, चील तथा चावल थे ?

जनक ने कहा—'नहीं महाराज ।'

अष्टावक्र ने फिर कहा—'किन्तु आप तो दोनों अवस्थाओं में थे !'

जनक—'हाँ, महाराज !'

अष्टावक्र ने कहा—,तब न वह सच था न यह सच ।

राजा जनक का समाधान हो चुका था ।

●

सन्त चाँग की गलत सीख

उन दिनों चाँग, चीन के प्रसिद्ध सन्त माने जाते थे। वे महात्मा कन्फ्यूशियस के शिष्य थे। चाँग का पूरा नाम चाँग-हो-चाँग था।

एक दिन सन्त चाँग देश भ्रमण के लिए निकले। उन्हें प्रजा की भलाई करने में आनन्द आता था। सन्त चांग घूमते-घूमते ताईवान पहुँचे। रास्ते में एक युवक माली कुँए से जल निकाल रहा था। वह एक-एक बाल्टी पानी निकालता और फिर उसे ढोकर प्रत्येक पौधे तक ले जाता। उसे इस कार्य में बहुत परिश्रम करना पड़ रहा था। अत: उसकी देह पसीने से तर हो रही थी। लेकिन उसका काम फिर भी अधूरा पड़ा था।

सन्त चाँग को उस पर बड़ी दया आई। वे काफी देर तक उसके लगातार परिश्रम को देखते रहे। फिर सोचने लगे। यह युवक भी क्या पुराने ढर्रे पर चल रहा है। दुनियाँ न जाने कहाँ पर पहुँच गई है। चाँग को अपनी ओर आता देख माली ने प्रणाम किया।

चाँग एक मिनट को खड़े रहे। वे फिर बोले—"भाई इस तरह तो काफी परिश्रम करना पड़ता होगा।

"हाँ महात्मन् !" माली ने सिर झुकाते हुए कहा।

"तो फिर एक काम क्यों नहीं कर लेते !" चांग ने कहा।

"क्या ?" माली प्रश्न चिह्न की अवस्था में बोला।

"यदि तुम लकड़ी की एक घिर्री बना कर, उसमें रस्सी लपेट कर खड़े-खड़े ही पानी खींचने का प्रबन्ध कर सको तो कैसा रहे। फिर प्रत्येक पौधे तक नाली बना दो। इतना परिश्रम न करना पड़ेगा।" चाँग ने कहा।

युवक माली महात्मा की सीख पर फूला नहीं समाया। उसने चाँग के बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण किया। वह अब अपनी ढेंकली से पौधे सींचने लगा।

माली का समय तो बच गया। किन्तु उसका व्यायाम समाप्त हो गया। माली का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरने लगा। किन्तु विशेष चिन्ता न हुई।

कुछ दिन बाद चाँग फिर उसी रास्ते से निकले। युवक का वह सुगठित शरीर, ज्यों का त्यों नहीं मिला फिर भी उन्होंने उसे भाप की मशीन की जानकारी दी। जिससे परिश्रम बिल्कुल भी न करना पड़े। युवक माली ने यह बात भी मान ली। और अब वह भाप के इन्जन से पौधे सींचने लगा।

काफी दिन बाद चाँग की इच्छा हुई कि माली को देखा जावे। संभवतया उसका बगीचा लहलहा रहा होगा।

जब चाँग उसके बगीचे पर पहुँचे तो माली उन्हें नहीं मिला। पूछने पर पता चला माली बीमार रहता है। इसलिए समय पर पौधों को पानी नहीं मिल पाता। इसलिए बगीचा सूखा पड़ा था।

चाँग माली को देखने उसके घर गये। देखा तो माली सचमुच बीमार था। वह बहुत कमजोर हो गया था।

चाँग ने हँसकर पूछा—"कहो भाई अभी भी अधिक महनत करनी पड़ती है क्या ?" तभी माली की पत्नी ने सन्त के हाथ जोड़कर कहा—"श्रीमान्‌जी ! और कोई उपाय बताने की अपेक्षा तो, इन्हें आप ऐसी सीख दीजिये, कि ये पहले की तरह हाथ से ही पौधे सींचा करें। देह का आराम ही इनकी बीमारी का कारण है।"

चाँग अपनी गलत सीख पर बहुत पछताये। क्योंकि वह एकांगी थी। पत्नी की बात मानकर माली फिर अपने पुराने ढर्रे पर आ गया और ठीक भी हो गया।

सेवा ही धर्म

एक बार राजा वृषादर्भि के राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। चारों ओर हा-हाकार मच गया। राजा के प्रयत्नों के बावजूद भी लोग भूख से तड़पने लगे।

इसी भयंकर अकाल के समय महर्षि शांखल्यायन तथा महर्षि आत्रेय सपत्नीक राजा वृषादर्भि के राज्य में घूमते हुए जा पहुँचे। राज्य की स्थिति से अवगत होने पर दोनों काफी दुःखी हुए। प्रजा के दुःख में दुःखी वे भूखे ही रहे।

जब राजा को महर्षियो के आने का पता चला तो वह प्रचुर मात्रा में अन्न, सोने के सिक्के इत्यादि उपहार लेकर महर्षियों के पास पहुँचा।

राजा के आग्रह पर आत्रेय ने कहा—'राजन्, हमें इस सब की कोई आवश्यकता नहीं है।'

राजा ने कहा—'आप चिन्ता न करें, सुरक्षा भी करा दूँगा। महर्षि शांखल्यायन ने कहा—'आपका आग्रह यथोचित है, किन्तु हमारी भी विवशता है।'

उपहार स्वीकार न किये जाने के कारण राजा बहुत दुःखी हुआ। तब आत्रेय मुनि ने कहा—'हमारी ओर से इसे आप अकाल पीड़ितों में बँटवा देवें।'

वृषादर्भि ने कहा—'अकाल पीड़ितों को तो राज्य की ओर से प्रबन्ध किया गया है।' उसने फिर कहा—'यह तो आपको ही है।'

इस पर महर्षि शांखल्यायन ने कहा—'हमारा भी कुछ

दायित्व है, राजन् ! हमें भी इसमें भागीदार बनने का अवसर प्रदान कीजिये। हठ करना उचित नहीं।'

महर्षियों की बात पर राजा बृषादर्भि को झुकना पड़ा। महर्षियों को उपहार में दी जाने वाली यह राशि तथा अन्न अकाल पीड़ितों में बाँट दी गई।

इस बात से वर्षा के देवता इन्द्र भी काफी प्रसन्न हुए। चारों ओर वर्षा होने लगी। राज्य से अकाल कुछ ही समय में दूर हो गया।

●

आवारा लड़कों का मित्र

नेपल्स में आवारा बच्चे सदियों से समस्या बने हुए थे। द्वितीय विश्व युद्ध में इन लड़कों के पिता चल बसे थे। शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था। इसलिए वे भीख माँगते, चोरी करते और अन्य गलत कार्य करते। सबसे पहले इन बच्चों की ओर मारियो बोरेली का ध्यान गया। वे युवा पादरी थे। इन बच्चों को सुधारने की वजह से बोरेली ने अपना चौंगा उतार दिया। वे इन बालकों के सुधारने में जुट गये। बोरेली ने भी अब आवाराओं की तरह से फुटपाथ पर सोना शुरू किया। बालक उनमें घुलने-मिलने लगे। भीख माँगकर जो भोजन लाया जाता, उसमें बोरेली भी हिस्सा बँटाते।

जब ये लोग ज्यादा घुल-मिल गये तो एक दिन बोरेली ने उन्हें घर बनाकर रहने की प्रेरणा दी। एक दिन खाना खाते उन्हें समझाया—'यार! ऐसी भी क्या जिन्दगी, रात को हम फुटपाथ पर पड़े रहते हैं। अच्छा हो कि हम अपना परिवार बनाकर रहें।'

बोरेली की बात बालकों की समझ में आ गई। एक दिन बोरेली ने कहा—"प्यारे दोस्तो! मैंने एक घर खोज लिया है। सेंट जिनरो का टूटा चर्च हमारा घर होगा। कल से हम लोग वहीं रहेंगे।"

दूसरे ही दिन सारे आवारा लड़के वहाँ पहुँच गये। कूड़ा-करकट साफ कर दिया गया। बोरेली कुछ चटाइयाँ और कम्बल ले आया। लड़के सोचने लगे—हमारा वेसुवियो (नेता) बड़ा उस्ताद है। कहीं से कबाड़ा कर लाया।

फिर एक दिन बोरेली स्टोव और खाने-पीने की अन्य सामिग्री भी ले आया और बोला—दोस्तो ! अब हमें बासी-कूसी झूठी चीजें नहीं खानी चाहिये। बेसुवियो ने ताजा खाना बनाकर खिलाना आरम्भ किया। लड़के मारे खुशी के उछल पड़े।

बोरेली ने सोचा कि अब अपना असली रूप प्रकट किया जावे। वह उस दिन जब चौंगा पहने लौटा तो पाया लड़के खाना खाने की वजह से बैठे हैं। किन्तु नये वेष में बोरेली को देखकर वे हँस पड़े। "वाह भई खूब ढौंग बनाया है।" तो दूसरा बोला यह स्वांग न चलेगा।"

बोरेली बोला—दोस्तो नाराज न होओ, मैं तो पादरी ही था। तुम्हें रास्ते पर लाने की वजह से बेसुखियो बना। एक लड़का बोला—'तो क्या आप हमें यूं ही छोड़कर चले जायेंगे।" फादर बोरेली ने धैर्य बँधाते हुए कहा—"घबराओ नहीं मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

बोरेली ने अगले ही दिन से एक-एक दो-दो लड़कों को अलग-अलग स्कूलों में भर्ती करवा दिया। लड़के सुधरने लगे। एक दिन जब एक लड़का बिगड़ने लगा तो फादर ने डांट पिलाते हुए कहा—"तुम लोग मेरी दोस्ती का गलत लाभ उठाना चाहते हो। लो मैं भी चला।

फादर की आँखें देखकर सब घबरा गये। लड़के मन लगाकर पढ़ने लगे। बोरेली इन बालकों की तब तक सहायता करते रहे जब तक कि वे स्वयं अपने पैरों पर न खड़े हो गये। नेपल्स की एक बहुत बड़ी समस्या फादर बोरेली ने हल कर दी।

पात्रता का आधार

तब विश्व विख्यात महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। अपना दायित्व पूरा करके श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी को रवाना हो गये। मार्ग में निर्जन मरु प्रदेश में उत्तकमुनि का आश्रम पड़ा, इसलिए श्रीकृष्ण को वहाँ रुकना पड़ा।

श्रीकृष्ण ने उत्तंक को प्रणाम किया। उत्तंक ने उन्हें यथेष्ठ आसन दिया। अपनी जिज्ञासावश मुनि ने पूछा—'हे भगवन्! कौरवों के पास अपार शक्ति थी, पाण्डव नगण्य थे फिर भी कौरव क्यों हार गये?'

श्रीकृष्ण ने बताया—'सद् विवेक के मर जाने पर, सत्य को भूलना तथा न्याय को ठुकराना भी इसका एक कारण है। उत्तंक मुनि की जिज्ञासा के शान्त होने पर श्रीकृष्ण ने पूछा—'और कोई सेवा, मुनिवर!'

मुनि ने कहा—'रेगिस्तान में जल का अभाव रहता है, हो सके तो उपलब्ध कराइये।'

श्रीकृष्ण ने प्रत्युत्तर में कहा—'जब भी आपको जल की आवश्यकता हो मेरा स्मरण कर लीजिये आपको जल मिलेगा।' मुनि को प्रणाम करके श्रीकृष्ण द्वारिका चले गये।

कुछ समय बाद मुनि को प्यास लगी, भगवान् का स्मरण किया तो पाया, एक चाण्डाल कमण्डल लिए खड़ा है। उसने कहा—'मुनिवर, मैं जल लाया हूँ, तृप्ति कीजिये।'

चाण्डाल को देखकर मुनि बौखला उठे। चाण्डाल दुत्कार

दिया। तभी श्रीकृष्ण स्वयं प्रगट हुए। मुनि ने कहा—'आपने जल लेकर किसे भेज दिया ?'

श्रीकृष्ण ने कहा—'मुनिवर ! आपके लिए तो सभी समान हैं। इन्द्र स्वयं चाण्डाल वेष में आये थे। आपने अपने विवेक को यदि पात्रता का आधार बनाया होता तो उन्हें आप दुत्कारते नहीं।'

मुनि को बड़ा क्षोभ हुआ किन्तु पात्रता के आधार का ज्ञान हो गया।

डरो नहीं

धर्मकीर्ति ने तब महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की। उसके पिता अत्यन्त धनवान थे। शिक्षा ग्रहण करके जब धर्मकीर्ति अपने गाँव लौटे तो उनका विशिष्ट स्वागत किया गया। इसका कारण यह था कि उस गाँव में इतना पढ़ा-लिखा कोई भी न था।

कुछ समय बीतने पर पिता ने जब धर्मकीर्ति के विवाह की बात चलाई तो उसने कहा—'मैं विवाह नहीं करूँगा।' पिता ने पूछा—'ऐसा क्यों ?'

धर्मकीर्ति ने कहा—'संसार तथा शरीर नाशवान है मैं तो मोक्ष का प्रयत्न करूँगा।'

धर्मकीर्ति को असमय में ही वियोग की बातें करते देख उसके पिता अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य को इस बात का सन्देश भेज दिया।

सन्देश को प्राप्त करते ही महर्षि ने धर्मकीर्ति को अपने पास पुनः बुला लिया।

एक दिन महर्षि ने धर्मकीर्ति को फूल तोड़ने भेजा। जब वह बगीचे से फूल तोड़ रहा था बगीचे का माली आ निकला वह लाठी लेकर उसके पीछे दौड़ा।

धर्मकीर्ति बुरी तरह से हाँफता हुआ आश्रम में आकर महर्षि के चरणों में गिरकर सारी बातें कह गया।

धर्मकीर्ति की बातें सुनकर महर्षि ने कहा—'तुम्हारे अनुसार शरीर नाशवान है। जब शरीर नाशवान है तो तुम डरे क्यों ? माली तुम्हारे शरीर को ही तो नष्ट करना चाहता था।'

महर्षि की बात का धर्मकीर्ति कोई उत्तर न दे सका तब महर्षि ने कहा—'आत्मा सत्य है लेकिन देह भी असत्य नहीं है इसलिए दोनों को साधने से ही काम चलेगा। शिक्षा को व्यवहार में लाना भी आवश्यक है। बिना विवाह किये तुम्हें संसार का ज्ञान ही न होगा।'

महर्षि की बातों को ग्रहण करके धर्मकीर्ति चला गया और विवाह करके दोनों पक्षों का साधन करने लगा।

पूजनी चिड़िया

उन दिनों पांचाल राज्य में सम्राट ब्रह्मदत्त का शासन था। उनकी राजधानी काम्पिल्य नामक नगर में थी।

एक बार सम्राट ब्रह्मदत्त के पुत्र को पक्षाघात हो गया। पांचाल राज्य के एक से एक बढ़िया वैद्य राजधानी काम्पिल्य पहुँचने लगे। सभी ने राजकुमार का अपनी-अपनी क्षमता के अनुकूल उपचार किया किन्तु राजकुमार को कोई लाभ न हुआ।

सम्राट ब्रह्मदत्त के महल में एक पूजनी चिड़िया का घोंसला था। उसके एक बच्चे को भी पक्षाघात हो गया था। पूजनी चिड़िया के बच्चे तथा राजकुमार दोनों पूर्व जन्म के मित्र थे। उन्होंन एक बार एक हरिण के बच्चे को अपने वाणों से विदीर्ण कर डाला था। इसलिए दोनों को एक ही समय पक्षाघात हुआ।

पूजनी चिड़िया को इन दोनों का रहस्य ज्ञात था। अतः एक दिन वह उड़ी और समुद्र के किनारे घूमती हुई पक्षाघात को ठीक करने वाले दो फल लेकर आई।

एक फल उसने राजकुमार के उपचार को फेंक दिया तथा दूसरे से अपने बच्चे का उपचार करने लगी। जब दोनों ठीक हो गये तो एक दिन राजकुमार ने खेल-खेल में ही पूजनी चिड़िया के बच्चे को मार डाला।

पूजनी चिड़िया बड़ी दुःखी हुई। सम्राट ब्रह्मदत्त भी उसके प्रति कृतज्ञ था क्योंकि उसने राजकुमार की जान बचाई थी। किन्तु राजकुमार के कार्य से सम्राट को भी बहुत दुःख हुआ।

जब पूजनी चिड़िया घोंसला छोड़कर अपने अन्य बच्चे को लेकर जाने लगी तो सम्राट ने क्षमा माँगते हुए उससे महल में ही रहने का निवेदत किया।

पूजनी चिड़िया ने कहा—'मुझे अपना सर्वनाश नहीं कराना है, आपका पुत्र दुष्ट है, वह मेरे अन्य बच्चों को भी मार डालेगा।' यह कहकर वह अपने बच्चों सहित महल छोड़कर अन्यत्र चली गई। वह फिर कभी नहीं आई।

* * *

सोफिया का कौवा

फ्रेडरिक नामक एक जर्मन अमरीका में आकर बस गया। उसकी दादी सोफिया पहले ही अमरीका चली आई थी। जिसने अपने पति के मर जाने पर एक कृषक से पुर्नविवाह कर लिया था।

सोफिया के पति का एक बंगला खेतों पर भी था। फ्रेडरिक कहीं पर नौकर था। वह कभी-कभी मन बहलाने को वहाँ आ जाता था। अधिकांश समय उसका खेत पर ही बीतता।

एक बार जब वह अपनी छुट्टियाँ बिताने के लिए आया तो उसे शिकार की सूझी। वह बन्दूक लेकर बाहर निकला। कोई और पशु-पक्षी तो नजर नहीं आया, किन्तु एक वृक्ष की चोटी पर एक बूढ़ा कौआ बैठा था। फ्रेडरिक ने उधर ही निशाना साध लिया! बन्दूक से गोली छूटने ही बाली थी कि तब तक सोफिया का पति आ पहुँचा। वह फ्रेडरिक की बन्दूक नीचे करता हुआ बोला—"यह क्या करते हो भाई! यह तो तुम्हारी दादी का पालतू कौवा है। इसे फिर कभी न मारना।"

कौआ सोफिया से काफी हिल गया था। वह जब तक दिन में तीन-चार बार उससे न मिल लेता तो चैन न आता था।

फ्रेडरिक बंगले में जाकर दादी से बातें करने लगा। तभी खिड़की से फड़फड़ की आवाज आई। फ्रेडरिक कौवे को जान गया। कौवा भीतर आकर सोफिया की गोदी में, छोटे बच्चे की तरह लौटने लगा।

सोफिया बोली—फ्रेडरिक पता नहीं यह मुझे इतना प्यार क्यों करता है।

लगभग दो वर्ष बाद फ्रेडरिक सेना में भरती हो गया। दादी के गाँव से यह स्थान ५०० मील दूर था। एक रात जब फ्रेडरिक सो रहा था तो कड़-कड़ की आवाज आई। लेकिन उसने कोई परवाह न की।

जब वह सबेरे उठा तो खिड़की में एक कौवे को मरा हुआ पाया। जब निकट से देखा तो सोफिया (दादी) वाला कौवा था। वह आश्चर्य में पड़ गया। कई दिन बाद सोफिया के पति का पत्र आया तब पता चला कि सोफिया के मरते ही कौवा फ्रेडरिक को सूचना देने आया था।

कम दुःख सह लो

पुराने जमाने में लुकमान नाम के एक हकीम रहते थे। पहले जब वे बहुत गरीब थे तब वे एक राजा के यहाँ गुलाम थे। वे बहुत ही आज्ञाकारी और ईश्वर भक्त थे।

एक दिन राजा को ककड़ी खाने की सूझी। लुकमान राजा के लिये ककड़ी ले आया। जब राजा ने ककड़ी खाने के इरादे से अपने मुंह से लगाई तो वह बहुत ही कड़वी निकली।

राजा ने वह कड़वी ककड़ी स्वयं न खाकर तुरन्त ही अपने गुलाम लुकमान को दे दी। और कहा—ले ककड़ी खा ले।

लुकमान ने ककड़ी राजा के हाथ में से ले ली। और बिना कुछ भी ना-नू किये चुपचाप वह आनन्दपूर्वक ककड़ी खाता रहा।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि लुकमान यह कड़वी ककड़ी किस प्रकार से खा गया।

राजा ने लुकमान से उसकी ककड़ी बीतने पर पूछा— "लुकमान जो ककड़ी मुझसे नहीं खबी, इतनी कड़वी ककड़ी तुमने बड़े चाव से कैसे खा ली ?

राजा की बात सुनकर लुकमान बोले— राजन् ! आप रोजाना मुझे स्वादिष्ट भोजन कराते हो, यदि एक दिन आपने कड़वी ककड़ी खाने को दे दी तो क्या मैं उसे फेंक देता ? अपने प्यारे लोगों को चार मिठास में एक कड़वाहट भी हो तो क्या उसे दोषी ठहराना चाहिये।

लुकमान की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुरन्त लुकमान की पद-वृद्धि कर दी। यह लुकमान की स्वामी भक्ति और कम दुःख सह लेने की शक्ति से ही संभव हुआ।

लालच का फल

एक बार पण्डित कौत्स यमुना में स्नान करके सूर्य भगवान् को जल चढ़ा रहे थे। काफी दूर से एक घड़ियाल उन्हें ताक रहा था। किन्तु कौत्स काफी ऊँचे बैठे थे। अतः घड़ियाल वहाँ न आ सकता था।

घड़ियाल ने युक्ति से काम लिया। वह यमुना में अन्दर जाकर रत्नों के ढेर उठा लाया। उसने उन्हें ऊपर की ओर उछाला। मोतियों का ढेर कौत्स के आस-पास बिखर गया। कौत्स ने जब अपार धन देखा तो मन का लोभ जाग गया। वे जल्दी-जल्दी धन को उठा-उठाकर अपनी धोती में बाँधने लगे।

अपनी युक्ति पर घड़ियाल प्रसन्न था। उसे अवसर हाथ लग गया। जल से सिर ऊपर निकालकर वह बोला—'पन्डितजी !

आपके दर्शनों से मुझे भारी लाभ हुआ है। यह तो मेरी छोटी-सी भेंट थी। आपको जल्दी न हो तो मुझे आप त्रिवेणी तक पहुँचा दें। अगर यह काम आप कर दें तो मैं आपको पाँच मुक्ताहार दूंगा।

कौत्स मारे खुशी के उछल पड़े। वे घड़ियाल की बात मान गये। वे उसे त्रिवेणी तक ले जाने को सहमत हो गये। क्षणिक लालच ने उनका विवेक नष्ट कर दिया। घड़ियाल ने उन्हें सादर पीठ पर बिठाया और वहाँ से चल पड़ा। थोड़ी ही दूर पहुँचकर घड़ियाल को हँसी आ गई।

घड़ियाल को हँसते देख कौत्स बोले—'भइया क्यों हँसते हो ?' घड़ियाल बोला—'आप पंडित हैं। दूसरों को शिक्षा देते हैं किन्तु आप स्वयं ही लालच में फँस गये।

पंडितजी जब तक कुछ कह भी न पाये कि घड़ियाल ने एक ठहाका और मारा। इस बार पंडितजी घड़ियाल के पेट में चले गये।

बालको ! लालच बुरी चीज है। जो वस्तु हमारी नहीं उस पर हम अपना अधिकार समझें तो यह हमारी मूर्खता ही होगी। कौत्स ने लालच का फल पाया। वे पहली बार के मोतियों से भी तो सन्तुष्ट नहीं हुए।

वीर बालक : हकीकतराय

उन दिनों हमारे देश में मुगलों का शासन था। फारसी भाषा का महत्व भी काफी था। फारसी पढ़ाने के लिए मौलवी लोग मदरसे तथा मकतब (स्कूल) चलाते थे।

ऐसे ही एक मकतब में हकीकतराय पढ़ता था। थोड़ी देर को मौलवी साहब बाहर चले गये तो बालकों ने खूब शोर मचाया। हकीकतराय बड़ा मेधावी बालक था सब बच्चे उससे जलते थे। अतः जब मौलवी साहब मकतब में नहीं थे तो मुसलमान बालक, हकीकतराय को तंग करने लगे। वह बोला— तुम हमारे देवी देवताओं को गाली न दो।

जब वे नहीं माने तो उसने भी गालियाँ देना शुरू करदीं। जब मौलवी साहब आये तो मुसलमान बच्चों ने नमक मिर्च लगाकर शिकायत की। मौलवी आग बबूला हो गया। उसने हकीकतराय को डाँट दिलाई।

मौलवी ने हकीकत से मुसलमान बन जाने को कहा तो उसने साफ इन्कार कर दिया। जब वह मुसलमान बनने को तैयार नहीं हुआ तो उसे मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई। माँ रोने लगी तो बालक हकीकत ने उसे समझा बुझाकर घर भेज दिया।

रावी के तट पर जल्लाद तलवार लिए खड़ा था। मुल्लाओं ने कहा—'बोलो जिन्दगी चाहते हो या मौत।"

बालक ने कहा— 'तुम न जिन्दगी दे सकते हो न मौत।"

तुरन्त सिर काट डालने का आदेश हुआ। जल्लाद की तलवार चली किन्तु गिर पड़ी—बालक की अवस्था देख कर।

वीर बालक हकीकतराय ने तलवार पुनः जल्लाद को थमाते हुए कहा—"तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो।"

इस बार पुनः तलवार चली, बालक का सिर कट गया। सत्य के लिए मर कर भी वह अमर हो गया। ●

लोपामुद्रा

अगस्त मुनि की पत्नी का नाम लोपामुद्रा था। वे जंगल में कुटी बना कर रहते थे। एक बार लोपामुद्रा ने अपने पतिदेव से स्वर्ण के बने गहने पहनने की इच्छा व्यक्त की।

अगस्त मुनि ने सोचा हम लोग विरक्त हैं, हमें गहनों की क्या आवश्यकता है ? लोपामुद्रा ने जब ज्यादा आग्रह किया तो मुनि इस बात पर राजी हुये कि यदि नैतिक तरीके से कमाये धन के आभूषण मिले तो वे ला सकेंगे।

पति की बात से लोपामुद्रा भी सहमत थी। अतः एक दिन मुनि अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति हेतु अपने शिष्यों के पास चल पड़े। वे जहाँ भी गये उनके शिष्यों ने उनका समुचित आदर किया।

सबसे पहले वे अपने शिष्य श्रेष्ठ श्रुतर्ण के पास गये। शिष्य ने गद्‌गद्‌ होकर अपने सारे हिसाब को मुनि के समक्ष रख दिया। नैतिक धन के आय-व्यय का ब्यौरा बराबर था। बचत कुछ भी न थी अतः मुनि आगे चल पड़े।

इसके बाद वे अपने शिष्य राजाओं क्रमशः बघ्नश्व तथा त्रसद्‌दसु के पास पहुँचे। दोनों राजाओं ने अपना-अपना हिसाब सहर्ष मुनि को सोंप दिया। नैतिकता पूर्ण सारी कमाई तत्काल खर्च कर देने के कारण उनके पास भी न्यायोचित धन न निकला। मुनि आशीर्वाद देते हुए आगे बढ़े।

सबसे बाद में वे अपने एक राक्षस शिष्य इल्बल के यहाँ पहुँचे। इल्बल ने मुनि का खूब आदर किया। उसके यहाँ

अनीति से कमाये स्वर्ण भण्डार अटे पड़े थे। वह मुनि की आज्ञा पाते ही अपना सर्वस्व देने को तैयार था किन्तु मुनि तो अनीति से प्राप्त कुछ भी न चाहते थे। अतः वे उसे भी आशीर्वाद देकर घर लौट आये।

लोपामुद्रा को जब मुनि ने अपनी यात्राओं के विषय में बताया तो पहले तो वे कुछ सोच में पड़ी कि इतने शिष्यों में से किसी के भी पास नैतिक धन न निकला, किन्तु बाद में उन्होंने सन्तोष कर लिया।

★

पाप की जड़

महाराष्ट्र (मराठा प्रदेश) में उन दिनों एक अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण चन्द्रशेखर रहते थे। यों वे पूना के रहने वाले थे किन्तु शास्त्रार्थ में सारा महाराष्ट्र उनका लोहा मानता था।

एक बार शास्त्रार्थ में किसी अन्य विद्वान से वे पराजित होकर घर से निकल पड़े। ऐसा अपमान तो उन्होने कभी-भी न सहा था। निराश होकर वे चलते-चलते किसी शहर में पहुँचे शाम हो गई थी वे उदास मन से एक विशाल मकान के चबूतरे पर जा बैठे।

मकान के ऊपर से उसकी मालकिन झाँक रही थी। चन्द्रशेखर की वेषभूषा को देखकर वह सोचने लगी—यह तो कोई महापण्डित लगता है किन्तु यहाँ उदास क्यों बैठा है ?

मालकिन का नाम कमलिनी था। वह वैश्या थी। वह नीचे आई और पूछने लगी—'क्या मैं आपके विषय में जान सकती हूँ ?' ब्राह्मण ने कहा—'मुझे याजक चन्द्रशेखर कहते हैं, मुझे एक विद्वान ने पराजित किया है, मैं उनके प्रश्न का उत्तर न दे सका था।'

वैश्या ने पूछा—'प्रश्न क्या था भगवन ?'

'पाप की जड़ क्या है ?' कह कर ब्राह्मण मुस्कराया।

'इसका उत्तर मैं दूंगी, आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये रोजाना दस स्वर्ण मुद्रायें आपको दूंगी। भोजन भी कराऊँगी।

याजक स्वर्ण मुद्राओं के लोभ में तुरन्त सहमत हो गए। अब वे नियमित वैश्या के यहाँ भोजन करने जाते और भेंट ले

आते। एक माह में ही उनके पास काफी स्वर्ण इकट्ठा हो गया। जब वे वैश्या के यहाँ जाते तो अनेकों लोगों को देखते, वहाँ नृत्य चलता, राग रंग होता अतः अब उन पर भी रंग चढ़ने लगा।

वैश्या अति सुन्दर थी, एक दिन उसने याजक से कहा 'आपको अन्यत्र निवास में बाधा आती होगी। आप यहीं रहा करिये।' याजक तो चाहते ही थे वे तुरन्त सहमत हो गये। अब तो वे वैश्या को चाहने लगे। काफी संकोच के बाद एक दिन उन्होंने वैश्या से अपने मन की बात कह दी।

तभी वैश्या ने कहा—'याजकवर आपके प्रश्न का यही उत्तर है। लोभ पाप की जड़ है उसी से वासना भी आप में उत्पन्न हुई।' याजक शर्मिन्दा होकर लौट गये उन्हें उत्तर मिल गया था।

★

कुसंगति का फल

पुराने समय में चमूपति नाम के राजा राज्य करते थे। उनके राजकुमार का नाम श्रीवत्स था। राजकुमार श्रीवत्स बड़ी उदण्ड प्रकृति का था। रोजाना वह कोई न कोई उदण्डता-पूर्ण कार्य किया करता था।

राजा चमूपति उससे जब ज्यादा परेशान हो गये तो अपने मंत्रियों की सलाह मानकर राजकुमार का विवाह कर दिया। विवाह के बाद तो वह और भी उदण्ड हो गया।

उसी समय महर्षि श्यावाश्व भी रहते थे। एक बार उन्होंने यज्ञ किया। राजा मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किये गये। यह आयोजन राजधानी के निकटस्थ अरण्यजैत गाँव में था। राजा भी वहाँ पहुँचे। उनके निवास की व्यवस्था थोड़ी दूरी पर की गई।

रात को राजा को एक तोते की आवाज सुनाई दी। तोता कह रहा था। 'आज अच्छा शिकार आया है, इसे पकड़ कर मार डालो। यह तोता एक दस्यु का था। दस्यु ने उसे बहुत समझाया किन्तु वह चिल्लाता ही रहा।

राजा ने सोचा यहाँ कुछ घटित हो सकता है अतः इस स्थान को छोड़ देना चाहिए। उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया। वे तुरन्त महर्षि श्यावाश्व के आश्रम में पहुँचे।

महर्षि के आश्रम में भी एक तोता था, उसने राजा का स्वागत करते हुए कहा—'पधारिये राजन्, आपका स्वागत है।' राजा तोते की आवाज सुन कर चौक पड़े।'

तोते के पूछने पर राजा ने रात वाला सारा किस्सा कह सुनाया। तोते को बहुत दुःख हुआ। वह बोला—'राजन् दस्यु का वह तोता मेरा सगा भाई है किन्तु वह कुसंगति में पड़ गया है। रोजाना दस्यु के कारनामे देखता है अतः वह भी दस्यु प्रकृति का हो गया है, उसकी ओर से मैं क्षमा माँगता हूँ।'

राजा को महर्षि के तोते की बात जँच गई। वे राजधानी लौट आये। उन्होंने अपने पुत्र की कुसंगति को छुड़ा दिया। पुत्र की उदण्डता समाप्त हो गई।

योग्यता का फल

काँची में उन दिनों महाराज देवमित्र का शासन था। अपनी वृद्धावस्था को देखते हुए वे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे।

अपने प्रधानमंत्री बोधायन की बात मानते हुए उन्होंने अपने बड़े पुत्र सुकेश को राजगद्दी सौंप दी।

राजगद्दी धारण करने के अगले ही दिन महाराज सुकेश के दरबार में एक ग्रामीण व्यक्ति दुहाई देता हुआ आया। उसने पुकार की—'महाराज मैं गरीब हूँ, राजमाता ने मेरी झौंपड़ी में आग लगवा कर उसे नष्ट कर दिया है, न्याय कीजिये।'

महाराज सुकेश ने बजाय न्याय करने के उस ग्रामीण को बुरी तरह से फटकारते हुए कहा—'राजमाता के बिरुद्ध अभियोग लेकर दुबारा आया तो दुष्ट फाँसी पर लटका दूँगा। बेचारा ग्रामीण न्याय से वंचित होकर चला गया।

महाराज देवमित्र की आत्मा कांप उठी। उन्होंने अगले ही दिन राजकुमार सुकेश को गद्दी से उतार कर मझले राजकुमार विरथ को राजा घोषित कर दिया।

राजकुमार बिरथ के राजा बनने के तुरन्त बाद एक कलाकार आया और पुकार करने लगा—'महाराज आपके प्रधानमंत्री ने मेरे जीवन भर की कमाई कुये में फिकवा दी है, न्याय कीजिये !'

राजा होकर भी विरथ अपने प्रधानमंत्री पर अभियोग न चला पाये। उन्होंने कलाकार को कीमत दे दी किन्तु प्रधानमंत्री

से कुछ भी न कहा। महाराज देवमित्र ने विरथ को भी हटा दिया।

अन्त में तीसरे पुत्र प्रताप को गद्दी दी गई। गद्दी पर बैठते ही, एक पीड़ित ने पुकार की—'हमने राज्य कर चुका दिया फिर भी आपके पिता ने हमसे पुनः कर मांगा, न देने पर पिटाई करवाई महाराज ! न्याय कीजिये।

महाराज प्रताप ने तुरन्त पिता को दरबार में बुलाकर कोड़े लगाने का आदेश देकर पिटवाया। चारों ओर सन्नाटा था। पिटवाने के बाद प्रताप ने गद्दी छोड़ दी और कहा—'मुझे यह गद्दी नहीं चाहिए जिसमें पिता को भी दण्ड दिया जावे।' तुरन्त महाराज देवमित्र ने कहा पुत्र तुम्हीं इस गद्दी के योग्य हो, बड़ा होना कोई योग्यता नहीं है।

सिर कटाना पसंद

उन दिनों महाराष्ट्र में मराठों का शासन था। मराठा सरदार राघोवा ने अपने ही भतीजे की हत्या कर दी थी। अतः उन पर हत्या का अभियोग था।

राघोवा पर जिस न्यायालय में अभियोग था उसके न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री थे। श्रीराम शास्त्री अत्यन्त ईमानदार और सत्यवादी न्यायाधीश थे। उनकी सत्यता की गाथा तथा न्यायप्रियता दूर-दूर तक विख्यात थी।

राघोवा को बचाने की दृष्टि से उसकी पत्नी ने अनेकों उपाय किये किन्तु कोई भी उपाय काम न आया। एक बार उन्हें एक उपाय सूझा। क्यों न न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री को घर बुलाकर उन्हें भोजन करवाया जावे ? जिससे वे राघोवा को दंड नहीं देंगे।

अपनी सूझ के अनुसार राघोवा की पत्नी ने श्रीराम शास्त्री को भोज दिया और इस विचार से उनकी खूब आवभगत की कि इससे प्रभावित होकर वे राघोवा के पक्ष में ही निर्णय दे देंगे।

बातचीत के दौरान उसने अपने पति को बचाने सम्बन्धी बातचीत छेड़ दी।

इस पर न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री ने कहा—"न्याय की दृष्टि से तो राघोवा को प्राण दण्ड मिलना ही चाहिये।"

राघोवा की पत्नी ने गुस्से में आकर कहा—"इसका परिणाम आप जानते हैं क्या होगा ?"

श्रीराम शास्त्री ने पूछा—"क्या परिणाम होगा ?"

राघोवा की पत्नी ने कहा—हम आपकी जीभ कटवा लेंगे।

न्यायाधीश ने विनम्रतापूर्वक कहा—"यह आप कर सकती हैं। गलत निर्णय देने की अपेक्षा तो जीभ क्या ? मैं अपना सिर कटाना भी पसन्द करूँगा।"

और सचमुच न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री ने राघोवा को प्राण दंड की सजा सुनाई।

★

बूढ़ों की मदद कीजिए

बहुत पुराने समय में हमारे देश में, अशोक नाम के एक राजा राज्य करते थे। एक बार उन्होंने अपने पड़ौसी राज्य कलिंग पर चढ़ाई की। लाखों लोग मारे गये। स्त्री और बच्चे अनाथ हो गये। तब उनका हृदय बदल गया। उन्होंने फिर कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। वे शांति प्रिय बन गये।

एक बार उनके राज्य में अकाल पड़ा। लोग दाने दाने के लिए मुँहताज हो गये। किन्तु राजा ने तत्काल अपने राज्य के अन्न भण्डार खुलवा दिये। सुबह से शाम तक अनाज लेने वालों का तांता लगा रहता।

एक दिन शाम हो गई। जब सब लोग अपना अपना-अपना अनाज ले चुके तो एक अत्यन्त बूढ़ा व्यक्ति उठा और अनाज माँगने लगा। बाँटने वाले दूकानदार भी थक चुके थे। इसलिए बाँटने वाले ने उसे डाँटते हुए कहा—"कल आना आज तो खैरात बन्द हो गई।"

बूढ़ा व्यक्ति बहुत परेशान हुआ। वह सुबह से लाइन में लगा था किन्तु जवान आदमी धक्का मुक्की करके अनाज ले गये। उसका नम्बर ही नहीं आया। वह शाम तक चुपचाप बैठा रहा।

तभी एक हृष्ट-पुष्ट शरीर का एक नव जवान जैसा व्यक्ति आया और डाँटने वालों को आग्रह पूर्वक कहा—"देखो बेचारा बूढ़ा है। सुबह से लगा है। शरीर से दुर्बल होने के कारण सबसे पीछे रह गया है। इसे अन्न दे दो।"

नवयुवक की वाणी में ओज था। उसकी वाणी के प्रभाव से डाँटने वाले पसीज गये। बूढ़े को अनाज मिल गया। बूढ़े ने उस नवयुवक की सहायता से गठरी बाँध ली। अब गठरी उठे कैसे ? बूढ़ा इधर-उधर देखने लगा। तभी वह युवक बोला—"बाबा लाओ तुम्हारा अनाज में ही तुम्हारे घर तक पहुँचाये देता हूँ।"

युवक की इस अनोखी बात पर बूढ़ा व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ। युवक ने बूढ़े की गठरी अपने बलिष्ठ कन्धे पर रख ली। वह बूढ़े के पीछे-पीछे चलने लगा।

बूढ़े का घर जब थोड़ी ही दूर पर रह गया तो एक सैनिक टुकड़ी उधर से गुजरी। टुकड़ी के नायक ने घोड़े से उतर कर अभिवादन किया (नवयुवक जो गठरी ले जा रहा था को) उस व्यक्ति ने संकेत से आगे कुछ बोलने से इन्कार कर दिया। फिर भी बूढ़े की समझ में कुछ-कुछ आ गया। वह वहीं खड़ा हो गया। और बोला—"आप कौन हैं ? सच सच बतलाइये ! वरना मैं घर नहीं जाऊँगा।"

युवक ने उत्तर में कहा—"मैं एक नौ जवान हूँ। और तुम बूढ़े तथा दुर्बल व्यक्ति हो। बस इससे अधिक परिचय व्यर्थ है। चलो बताओ आपका घर किधर है।" किन्तु बूढ़ा व्यक्ति काफी अनुभवी होने के कारण पहचान गया। और क्षमा माँगते हुए बड़ी मुश्किल से बोला—"प्रजापालक ! आप सच्चे अर्थों में प्रजा पालक हैं। आप सम्राट अशोक हैं और मैं आपकी जनता का छोटा सा व्यक्ति। अपराध हुआ है क्षमा करें।

राजा अशोक ने कहा—"बाबा मेरा फर्ज है इसमें घबराने

की कोई बात नहीं।" बूढ़ा आश्वस्त तो हो गया किन्तु सोचने लगा—बड़े व्यक्ति सदैव बड़े होते हैं।

बूढ़े के लाख मना करने पर भी सम्राट अशोक ने उसकी पोटली घर तक पहुँचा दी।

दूसरे दिन बाँटने वालों को बुलाकर कहा—'आप लोग बूढ़े बड़ों का विशेष ध्यान रखें! कल तुम्हारा व्यवहार ठीक नहीं था। दूकानदार घबराये। किन्तु राजा ने उन्हें क्षमा कर दिया। आगे से सब कुछ ठीक चलने लगा।

●

अहंकार न करें

उज्जैन में तब राजा भोज का शासन था। उनके दरबार में माघ नामक एक कवि रहते थे। उनको अपने पांडित्य का बड़ा घमण्ड था।

एक बार माघ राजा भोज के साथ घूमने के लिए जंगल में गये। जब वे लौट रहे थे तो साँझ घिर आई थी। रास्ते में एक गाँव के सहारे एक बुढ़िया की झौंपड़ी थी। बुढ़िया सामने बैठ कर एक वृक्ष के नीचे चरखा कात रही थी।

माघ ने अपने अभिमान का प्रदर्शन करते हुये बुढ़िया से कहा—"यह रास्ता कहाँ जाता है—बुढ़िया ?"

बुढ़िया ने माघ को तुरन्त पहचान लिया, वह हँसकर बोली—"रास्ता कहीं नहीं आता जाता, उस पर आदमी आते जाते हैं। आप लोग कौन हैं ?"

"हम यात्री हैं।" माघ ने कहा।

बुढ़िया मुस्कराई और बोली—"यात्री तो दो ही हैं—सूर्य और चन्द्रमा सच बताओ तुम कौन हो ?"

बुढ़िया की बात सुनकर माघ थोड़ा चिन्तित हुये फिर बोले-"हम क्षण भंगुर मनुष्य हैं।"

इस पर बुढ़िया बोली—"यौवन और धन दो ही वस्तु क्षण भंगुर हैं—सच बताओ तुम कौन हो ?"

माघ की घबराहट बढ़ी तो उसे डराने के लिये बोला—"हम राजा हैं।"

बुढ़िया बोली—राजा तो दो ही हैं यमराज और इन्द्र तुम राजा नहीं हो सकते, सच क्यों नहीं बताते, कौन हो ?"

माघ घबरा उठे। अपनी हेकड़ी छिपाते हुए बोले—"हम तो क्षमा करने वाली आत्मा हैं।"

बुढ़िया बोली—"पृथ्वी और नारी दो ही क्षमा करने वाली वस्तुएं हैं। सच बताओ तुम कौन हो ?

माघ ने हार कर कहा—माँ हम हार गये, रास्ता बताओ। बुढ़िया बोली—"कर्ज लेने वाला और चरित्र हीन ही हारते हैं। सच कहो।" इस बार माघ चुप हो गए तो बुढ़िया बोली—"माघ तुमको मैं जानती हूँ। तुम्हें अहंकार न करना चाहिए।" बुढ़िया ने रास्ता बता दिया।

माघ, राजा भोज सहित आगे बढ़ गए।

अन्याय न हो

पुराने समय की बात है, नगर से थोड़ीदूरी पर एक महात्मा रहते थे। एक बार दो साधु व्यक्ति महात्माजी से मिलने के लिए गये। जब ये दोनो साधु महात्माजी की कुटिया पर पहुँचे, महात्माजी वहाँ पर उपस्थित न थे।

महात्माजी के शिष्यों ने बताया वे राज दरबार में गये हैं। दोनों साधुओं को बड़ा आश्चर्य हुआ, महात्मा को राज दरबार जाने से क्या मतलब ? उनको लगा ये निस्वार्थ नहीं है।

जिस भावना के साथ ये दोनों साधु आये थे राज दरबार की बात को सुनकर उनकी महात्माजी के प्रति भावना ही बदल गई। पूछने पर पता चला कि वे शाम तक आ पायेंगे। उन्होंने सोचा जब तक महात्माजी लौटते हैं नगर चलकर अपने लंगोट ही सिला लें।

यह नगर राज्य की राजधानी भी था। नगर पहुँचकर ये दोनों एक दर्जी से लंगोट सिलाने लगे। इसी वक्त दर्जी की एक सोने की जंजीर खो गई।

दर्जी ने साधुओं को ही चोर ठहराया। साधुओं को पुलिस पकड़ने आई वे राजा के सामने उपस्थित किये गये। राज दरबार ने भी इन्हीं साधुओं को चोर माना।

साधुओं को चोर मानकर उन्हें राजा ने सजा सुना दी। जब साधुओं को सिपाही हथकड़ी पहनाने के लिये आगे बढ़ा तो वहीं उपस्थित महात्माजी ने उसे रोक दिया।

पूरे दरबार में सन्नाटा छा गया। अपने योग बल से महात्मा जी ने बताया 'ये लोग चोर नहीं हैं, साधु हैं। ये आज मुझसे

मिलने आये थे किन्तु मुझे कुटी पर न पाकर ये समय काटने के लिए दर्जी के पास जा पहुँचे।

महात्माजी की बात को सुनकर राजा ने तुरन्त अपना दिया हुआ दण्ड वापिस ले लिया। जब महात्माजी दरबार छोड़कर साधुओं को लेकर कुटी की ओर चलने लगे तो उन्होंने कहा—'मेरे प्रति आपकी भावना बदल गई थी, मैं दरबार में क्यों जाता हूँ ? मैं केवल आप जैसे लोगों के बचाव के लिए ही जाता हूँ कि नहीं। निर्दोषों पर अन्याय न हो।'

साधुओं के पास कोई उत्तर न था।

नैतिकता की शक्ति

पुराने समय में पंचनद राज्य की प्रजा में बड़ा असंतोष था। जिधर देखो उधर ही आपसी कलह झगड़े और अव्यवस्था थी। पंचनद के राजा को इस बात से बहुत दुःख था। जबकि पड़ौसी राज्य कुरू में प्रजा अमन चैन से रहती थी।

राजा ने कुरू राज्य की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अपने पुरोहित आचार्य देवघर को कुरू भेजा।

कुरू पहुँचते ही सर्व प्रथम आचार्यजी कुरू राज्य के राज पुरोहित से मिले। इस पुरोहित का नाम नन्द था। पुरोहित नन्द ने कहा—'मैं कुरू का राजस्व मंत्री भी हूँ। एक बार मेरे सामने बड़ी विकट समस्या आई। हुआ यह कि एक किसान की जमीन नापते समय बीच में गड्ढा आ गया। उसमें कोई जीव रहता था। यदि मैं नापने वाले डण्डे को गड्ढे पर रखूं तो जीव हिंसा होती, आगे रखूं तो किसान को जमीन कम मिलती। मेरा मन खट्टा हो गया। आगे की बात आप मेरे सारथी से पूछ लें।

देवघर सारथी के पास पहुँचे उसने कहा—'मैंने एक बार घोड़ों को तेज दौड़ाने के लिए चाबुक दिखाया उस दिन से मेरा मन खट्टा हो गया है। अब आप नगर सेठ सारिपुत्र के पास जाइये।

आचार्यजी सारिपुत्र के पास पहुँचे तो उसने कहा—एक बार मैंने एक किसान से अन्न खरीदा। तोल के दौरान मैं एक तोल भूल गया। जल्दी में मैं चला आया। पश्चात्ताप आज तक यह है कि कहीं किसान का ज्यादा अन्न तो मैं नहीं ले आया। अब आप द्वार रक्षक पुष्ण के पास जाइये।

पुष्ण के पास पहुँचने पर उसने कहा—एक शाम को एक युवक और एक युवती देरी से नगर में घुसने लगे तो मेरे मुंह से निकला—इतने समय तक रस बिहार में क्यों घूमते रहे।' युवक ने जब युवती को अपनी बहन बताया तो ग्लानि से भर उठा। अब आप उत्पलवर्णा वैश्या से जाकर मिलो।

उत्पल वर्णा के पास पहुँचने पर उसने बताया राजकुमार चन्द्रसेन से मैंने वायदा किया था कि तीन वर्ष तक मैं किसी पुरुष से न मिलूंगी जब तक आप न आवें। किन्तु तीन वर्ष की समाप्ति पर मैं एक पुरुष से बातें करने लगी तभी चन्द्रसेन आ गये। मैं तभी से दुःखी हूँ। आचार्य ने सारी बातें पचनंद नरेश को बता दीं। इनका पालन करने पर राज्य में सन्तोष हो गया।

उतावलापन ठीक नहीं

मगध देश में एक महापद्मनन्द नाम के राजा राज्य करते थे। वे काफी बलवान थे। चन्द्रगुप्त उनकी सेना में था। किन्तु वह स्वयं राजा बनने के स्वप्न देखता था।

एक बार उसे नन्द के निमन्त्रण पर कुछ ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना था। जब वह कई ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे चुका तो एक आदमी की आवश्यकता रह गई। वह इस बार कूट-नीतिज्ञ चाणक्य की तलाश में था।

जब चन्द्रगुप्त अपने घोड़े पर बैठा हुआ जा रहा था तो जंगल में घास खोदते हुए चाणक्य दिखलाई पड़े। वह घोड़े से उतर गया और अभिवादन करके बोला—"आचार्य प्रवर यह आप क्या कर रहे हैं ?"

चाणक्य ने मुस्कराते हुए कहा—"देखते नहीं घास का ढेर पड़ा है। सुबह जब मैं आ रहा था तो एक तिनका मेरे पाँव में चुभ गया था। इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की कि सारी जमीन पर से घास को मिटा दूंगा।"

चाणक्य के संकल्प को देखकर चन्द्रगुप्त बहुत खुश हुआ और मन ही मन सोचने लगा—'क्यों न इन्हें नन्द से भिड़ा दूं फिर वह बोला—आचार्य कल आपका नन्द के यहाँ निमन्त्रण है।' चाणक्य ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन नियत समय पर चाणक्य राज महल में पहुँचे। एक कमरे में सभी ब्राह्मण बैठे थे। उनका अभिवादन करने के लिए सम्राट नन्द पधारे। उन्होंने सभी से यथेष्ट अभिवादन

किया, किन्तु चाणक्य से नहीं। वे चाणक्य से बोले—'तुम काले कलूटे कहाँ से आ गये। किसने बुलाया ?'

चाणक्य को इतना सहन कहाँ था ? वे सांप की तरह फुंकार उठे। और बोले—'नन्द मैं प्रतीज्ञा करता हूँ कि तुझे मिट्टी में मिला दूँगा।"

चन्द्रगुप्त चाणक्य के संकल्प से बहुत खुश हुआ। वह अपनी नीति में सफल हो गया। चन्द्रगुप्त ने भी नौकरी छोड़ दी। चाणक्य का ध्यान घास से हटकर नन्द पर लग गया।

एक और एक ग्यारह होते हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त मिल गये। नन्द को समाप्त करने की योजना बनाने लगे। वे दोनों सेना इकट्ठी करके मगध की राजधानी पाटलीपुत्र पर आक्रमण करते किन्तु दोनों बार-बार पराजित होते।

एक दिन चन्द्रगुप्त जंगल में अकेला ही रह गया। दिन ढला। अन्धकार घिरने लगा। मगध के गुप्तचरों से आँख बचाता हुआ वह एक नजदीक के गाँव में, एक बुढ़िया के घर पहुँचा। चन्द्रगुप्त के कहने पर बुढ़िया ने राहगीर समझकर उसे रात भर की शरण दे दी।

बुढ़िया ने एक चारपाई बिछा दी। चन्द्रगुप्त थका तो था ही अतः उसे पड़ते-पड़ते ही नींद आ गई।

द्वार पर आये अतिथि का सत्कार करने की दृष्टि से बुढ़िया ने चन्द्रगुप्त को खिचड़ी पकाई। जब खिचड़ी पक गई तो थाल में परोस दी। और चन्द्रगुप्त को जगाया। और कहा—'ले बेटा पहले भोजन कर ले।' चन्द्रगुप्त काफी भूखा था फिर भी बोला-'माँ इतनी तकलीफ क्यों की ?' बुढ़िया ने कहा—'यह तो अपना धर्म है।'

मातृवत स्नेह पाकर चन्द्रगुप्त की आँखें भर आईं। भूखा होने के कारण उसने बीच थाली में से हाथ में बड़ा कौर भरा। खिचड़ी बहुत गर्म थी। हाथ जलने लगा। अतः उसने खिचड़ी मुंह में डाल दी। मुंह भी जल गया।

बुढ़िया बोली—'बेटा तुझ पर चन्द्रगुप्त की छाया पड़ गई दीखती है।'

चन्द्रगुप्त बोला—'कैसे माँ ?' तब बुढ़िया ने कहा—ऐसे ही वह उतावला है। वह एकदम राजधानी पर आक्रमण करता है। उसे चाहिये तो यह कि वह पहले किनारे वाले गाँवों को जीते। फिर चारों ओर से जीतने के बाद राजधानी पर आक्रमण करे। सो तेरा हाल है। पहले किनारे वाली खिचड़ी खानी चाहिए थी। ऐसा भी क्या उतावलापन ?

चन्द्रगुप्त शर्मिन्दा हुआ। उसने बुढ़िया के पते की बात हृदय में उतार ली और राजा बन गया।

पक्का इरादा

तब भगवान् गौतम बुद्ध अपना घर-बार छोड़कर सत्य की खोज में भटक रहे थे। राजकुमार का वैभवपूर्ण जीवन जीने के बाद तपस्या करना काफी कठिन काम था। कई दिनों तक जब जंगल में उन्हें असुविधा ही नजर आई तो उन्होंने सत्य की खोज की बजाय घर लौटने का निश्चय किया।

लौटते हुए रास्ते में एक विशाल झील पड़ी, कुछ समय के लिए वे वहाँ रुके। वहाँ उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। एक गिलहरी बार-बार झील में डुबकी मारती फिर किनारे की धूल में आकर लोटती। यह क्रम जब बुद्ध काफी देर तक चलता हुआ देखा तो गिलहरी से इसका कारण पूछते हुए उन्होंने कहा-'गिलहरी यह क्या करती हो ?'

गिलहरी ने कहा—'इस झील ने मेरे मासूम बच्चों को डुबा लिया है, मैं इसे सुखाकर रहूँगी।'

भगवान् बुद्ध को छोटी-सी गिलहरी के निश्चय पर हँसी आ गई वे बोले—'इतनी बड़ी झील क्या तुम सुखा पाओगी।'

'अवश्य' कहकर गिलहरी चलने लगी तो बुद्ध ने फिर पूछा—'तुम्हें कितना समय लगेगा ?'

'इससे मुझे कोई मतलब नहीं !' मैं अपना काम करती रहूँगी। कृपया आप मुझे बातों में न उलझायें, मेरे पास समय नहीं है। काम करने दें।' कहकर गिलहरी पुनः उसी काम पर लग गई।

भगवान् बुद्ध निश्चय करके भी सत्य की खोज को छोड़कर नगर की ओर लौट रहे थे। उन्हें गिलहरी ने दृढ़ निश्चय की शिक्षा दे डाली।

गिलहरी से प्रेरणा लेकर वे पुनः जंगल की ओर ही मुड़ गये उन्होंने नगर वापिस लौटने का इरादा छोड़ दिया।

अब उन्होंने गिलहरी की तरह से सत्य प्राप्ति के लिए पक्का इरादा कर लिया। अन्त में वे अपने निश्चय में सफल हुए और बुद्ध बन गये।

उदार साहस

पुराते समय की बात है—एक बार काशी के राजा ने कौशल राज्य पर आक्रमण कर दिया। कौशल की सैनाओं ने काशी की सैनाओं के छक्के छुड़ा दिये किन्तु दुर्भाग्य से कौशल को हारना पड़ा।

कौशल की सैनाओं के हथियार डालते ही कौशल नरेश राज्य छोड़कर भाग निकले। विजयी राजा पराजित राजा को पकड़ने के अनेकों प्रयत्न करता है—इसीलिए कौशल नरेश को जीवित पकड़ने के लिए काशी नरेश ने एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार घोषित कर दिया।

निर्वासित अवस्था में कौशल नरेश जंगलों की खाक छान रहे थे। ये जंगल मगध राज्य के अन्तर्गत आते थे। उन्हीं दिनों मगध में भयंकर अकाल पड़ा। प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। मगध के नागरिकों ने छिपे हुए वेश में कौशल नरेश को पहँचान लिया।

मगध के इन नागरिकों ने कौशल नरेश से प्रार्थना की—'महाराज हमें बचाने का उपाय कीजिए।' कौशल नरेश जबकि स्वयं विपत्ति में पड़े थे, मगध के नागरिकों का क्या भला कर सकते थे ?

मगध के नागरिकों की दयनीय स्थिति को देखकर कौशल नरेश की आँखों में आँसू आ गये। वे अपने से कहने लगे ऐसा जीवन निरर्थक है—क्यों न नागरिकों की खातिर में अपने को काशी नरेश के हवाले कर दूँ !

अन्त में उन्होने वेश बदल कर काशी नरेश के पास जाकर कहा—'यदि आप सचमुच एक लाख स्वर्ण मुद्रायें मुझे दे दें तो मैं कौशल नरेश को पकड़वा सकता हूँ। काशी के राजा ने कहा–'यह तो घोषित पुरस्कार है—आप पकड़वाइये।'

तुरन्त, कौशल नरेश ने अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा—'मैं ही निर्वासित कौसल नरेश हूँ, मगध की दयनीय स्थिति मुझसे न देखी गई अतः एक लाख स्वर्ण मुद्रायें मगध के गरीबों में बाँट दीजिये। मेरा जो चाहें करें। काशी नरेश, उनकी उदारता से प्रभावित हुए, और उनका सारा राज्य भी लौटा दिया।

कर्म-फल

पुराने समय में एक राज्य में महाराजा विकर्ण का शासन था। उनके पुत्र का नाम सुकर्णव था। एक बार सुकर्णव आखेट के लिए जंगल में गया। जब सुकर्णव एक वृक्ष के नीचे खड़ा था, तो किसी अज्ञात बहेलिये का बाण आकर उसके सिर में लगा। राजकुमार का तत्काल निधन हो गया।

यह सूचना जब महाराजा विकर्ण के पास पहुँची तो वे बड़े दुखी हुये। राजकुमार को राजधानी लाकर उसका दाह-संस्कार कर दिया गया। सारी क्रियायें होने पर बहेलिये को दरबार में उपस्थित किया गया।

महाराज ने गुस्से में भर कर कहा—'क्यों बे—बहेलिये क्यों न तुझे मृत्यु दण्ड दिया जावे ? बहेलिये ने प्रधानमंत्री की ओर दृष्टि करके कहा—'महाराज ! मैं दोषी नहीं हूँ, यह कार्य तो मृत्यु ने किया है—मैं तो माध्यम भर हूँ। आप प्रधानमंत्री से पूछ सकते हैं।'

महाराज विकर्ण को बहेलिये की बात पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रधानमंत्री की ओर देखा। प्रधानमंत्री ने मृत्यु को बुलाया। फिर प्रधानमंत्री ने कहा—"आप मृत्यु से पूछ सकते हैं।'

मृत्यु ने कहा—'इसका काल आ गया था।' फिर काल को बुलाया गया। काल ने कहा—'महाराज यह तो कुमार के कर्मों का ही फल है। मैंने कुछ नहीं किया।'

जब कर्म को बुलाया गया तो उसने कहा—'मैं कैसा भी हूँ-अच्छा अथवा बुरा लेकिन जड़ हूँ, यह तो आत्मा का कार्य है। आप आत्मा से ही पूछें।'

आखिर में राजकुमार की आत्मा का आवाहन करके उसे बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा—'महाराज पहले जन्म में मैंने मांस खाने के लिए एक हरिण का बध किया था। उसी भावना से बहेलिया भ्रमित हुआ, अतः बहेलिये का कोई दोष नहीं है। यह तो कर्म पर आधारित है।'

आत्मा की बात को सुनकर महाराज विकर्ण को ज्ञान हो गया साथ ही बहेलिये को भी छोड़ दिया गया।

सदाचारी को जीत

महाभारत के विश्व विख्यात युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ किया। एक बलशाली घोड़ा छोड़ा गया। घोड़े के पीछे अर्जुन को नियुक्त किया गया।

अनेकों राज्यों में अपनी विजय पताका फहराता हुआ, घोड़ा अन्त में चम्पापुरी राज्य में प्रविष्ट हो गया।

उन दिनों चम्पापुरी में महाराज हंसध्वज का शासन था। महाराज ने तुरन्त अपने पुत्र सुधन्वा को घोड़ा पकड़ने का हुक्म दे दिया।

सदाचारी सुधन्वा ने घोड़ा पकड़कर अस्तबल में बाँध दिया। अब क्या था—युद्ध अवश्वम्भावी था। एक ओर सुधन्वा की सेना तो दूसरी ओर पाण्डवों की सेना। दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। कोई भी एक दूसरे को न जीत सका।

अब आया युद्ध का अंतिम दिन। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की इस बार अपने वाणों से सुधन्वा को न मार सका तो फिर कभी शस्त्र धारण न करूँगा। ऐसी ही प्रतिज्ञा सुधन्वा ने भी की। अर्जुन के साथ कृष्ण थे, अतः उसे उन पर पूरा विश्वास था।

निर्णायक युद्ध के दौरान अर्जुन ने जब वाण चढ़ाया तो कृष्ण ने कहा—'गोवर्धन धारण करने का अपना पुण्य इसमें जोड़ता हूँ।' उधर सुधन्वा ने कहा—'मैंने यदि एक पत्नी व्रत का पालन किया हो तो अर्जुन का वाण कट जावे।'

अर्जुन ने पहला वाण छोड़ा उसे सुधन्वा ने काट दिया। फिर अर्जुन ने दूसरा वाण छोड़ा, जिसके लिए कृष्ण ने कहा—

ऐरावत हाथी को बचाने का पुण्य अर्जुन के वाण में लग जाये। उधर सुधन्वा ने कहा—'मैंने कोई ऊधम न किया हो तो अर्जुन का वाण कट जावे।' दूसरी बार भी अर्जुन का वाण सुधन्वा ने काट दिया।

अर्जुन ने तीसरा और अंतिम वाण चढ़ाया तो कृष्ण ने कहा—मैंने २४ बार राक्षसों से मानवों की रक्षा की हो तो मेरा पुण्य अर्जुन के वाण में लग जावे। सुधन्वा ने कहा—'यदि मैंने अपनी संस्कृति के लिए कुछ किया हो तो अर्जुन का वाण कट जावे।' तीसरा वाण भी सुधन्वा ने काट दिया। विजय श्री सुधन्वा को उसके सदाचार के लिये मिली, जबकि कृष्ण के साथ होते हुए भी पराक्रमी अर्जुन को पराजित होना पड़ा।

—

पश्चाताप

एक बार एक धनिक चन्द्रचूड़ तीर्थयात्रा पर जाने वाले थे। उन्होंने सोचा क्यों न अपने मुख्य धन को साधू देव निपुण के पास रख चलूं। क्योंकि देवनिपुण ही उन्हें एकमात्र निःस्प्रह तथा विश्वास पात्र दिखलाई दिये।

चन्द्रचूड़ अपना धन एक पोटली में बाँधकर देव निपुण के पास जा पहुँचे और कहने लगे साधुवर ! मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ, यूं घर में मेरी पत्नी तथा पुत्र भी रहेंगे किन्तु डाकुओं का भय तो इस क्षेत्र में सदैव ही बना रहता है, इसलिए कृपया मेरा यह धन रख लीजिये। लौटने पर ले लूँगा।'

देव निपुण ने कहा—'अच्छा होता कि इसे आप अन्यत्र रख देते। जब चन्द्रचूड़ नहीं माना तो कह दिया अन्दर की कोठरी जहाँ चाहो रख दो।

चन्द्रचूड़ ने अपना धन टूटे से बक्से में रख दिया और तीर्थयात्रा को चला गया।

जब चन्द्रचूड़ तीर्थयात्रा से वापिस आया तो सबसे पहले वह देव निपुण के पास अपना धन माँगने गया। देवनिपुण ने उसका समुचित स्वागत किया। फिर चन्द्रचूड़ ने अपने धन की बात कही। देवनिपुण ने कहा—'धन जहाँ रखा हो, वहाँ से ले लो।' अन्दर जाकर टूटे बक्से में उसकी पोटली सुरक्षित मिली फिर भी इस चिन्ता से कि कहीं देव निपुण ने कुछ सिक्के निकाल न लिये हों, गिनने के लिए बैठ गया।

सिक्के गिनने पर कम बैठे तो चन्द्रचूड़ ने देवनिपुण से कहा–'सिक्के कम हैं, तुमने निकाले हैं, शीघ्र देदो।'

देव निपुण जब कुछ भी न बोला तो चन्द्रचूड़ और गुस्से में आ गया। उसे यह विश्वास हो गया कि सिक्के देवनिपुण ने अवश्य ही चुराये हैं। अब तो वह साधू को बुरी तरह से पीटने लगा। वह तब तक पीटता रहा जब तक कि साधू बेहोश न हो गया।

घर जाने पर चन्द्रचूड़ ने जब सारी बात अपनी पत्नी सौदाम को बताई तो उसे बहुत दुख हुआ—"उसने कहा—'स्वामी कुछ सिक्के तो पूर्व में मैंने ही निकाल लिये थे, आपने साधू को अकारण ही पीटा। इस पर चन्द्रचूड़ पश्चाताप से मर गया और देव निपुण के पास जाकर क्षमा याचना करने लगा। फिर भी देवनिपुण के मुख पर किसी प्रकार के चिह्न न थे।

★

भाई चाहिए

एक बार काशी नरेश ब्रह्मदत्त सिंहलद्वीप की यात्रा पर गये। जब वे लौट रहे थे तो अपने जहाज में उन्हें एक स्त्री का करुण-स्वर सुनाई पड़ा। जहाज जब और कुछ आगे बढ़ा तो एक नाव पर सवार कुछ डाकुओं को काशी नरेश ने एक स्त्री को बुरी तरह से पीटते देखा।

काशी नरेश के चिल्लाने पर डाकू तुरन्त भाग गये। फिर नरेश ने उस स्त्री से पूछा तो उसने कहा—'राजन् ! मैं एक भारतीय नारी हूँ। इन्हीं डाकुओं ने मेरे पतिदेव को मार डाला है। मेरे दो पुत्र थे वे पूर्व ही अलग रहने लगे है। आप न आते तो ये लोग मेरा शील हरण करने पर उतारू थे। अब चिन्ता यह है कि मैं अकेली अपना जीवन कैसे व्यतीत करूँगी।'

चिन्ता न करो बहन, आओ मेरे साथ सब प्रबन्ध हो जायेगा ! कह कर काशी नरेश ने उस अबला को अपने जहाज में बिठा लिया और अपने देश के लिए चल पड़े।

जैसे ही नरेश का जहाज भारतीय तट पर पहुँचा हजारों नर-नारियों को उनके स्वागत में खड़ा पाया। तट पर उतरकर राजा ने उस स्त्री से कहा—'बहन यहाँ जितने लोग खड़े हैं उनमें से तुम किसी को भी अपना पति अथवा पुत्र चुन सकती हो।

स्त्री ने कहा—'मुझे पति नहीं चाहिए क्योंकि पूर्व ही पति ने मुझे अपनी वासना पूर्ति का साधन समझकर, चाहर दीवारी में बन्द रक्खा।

मुझे पुत्र की भी आवश्यकता नहीं है। माँ होने के कारण मैंने अपने पुत्रों को बड़ी लालसा से पाला-पोषा किन्तु विवाह होने पर वे भी अलग हो गये।'

राजा की उत्सुकता जागी तो अनायास ही पूछ बैठे—फिर तुम्हें क्या चाहिए ?'

आँखों से आँसू बरसाती हुई स्त्री ने कहा—'मुझे एक भाई की तलाश है जो मेरे शील तथा धर्म की रक्षा कर सके। नरेश ने जब चारों ओर देखा तो सभी नेत्र नीचे किये थे। अन्त में राजा ने कहा—'बहन कोई भी जब तुम्हारा भाई बनने को तैयार नहीं है तो मैं अब तुम्हारा भाई हूँ। आओ मेरे साथ।' सचमुच उस स्त्री को ब्रह्मदत्त जैसा भाई मिल गया था।

मेजर डिक का घमंड

आजादी से पहले हमारे देश में अँग्रेजों का शासन था। तब यहाँ डिक नाम के एक सैनिक अधिकारी मेजर डिक रहते थे। वे बड़े घमण्डी थे। भारतीय साधुओं को वे 'बैगर' कहते थे।

एक दिन एक साधु कुछ खाने की तलाश में मेजर डिक के घर आये। जैसे ही वे अन्दर प्रविष्ट हुए तो न उनका कुत्ता ही उन पर भौंका और न नौकरों ने ही कुछ कहा। मेजर को यह बुरा लगा। तब वे स्वयं आकर चिल्लाने लगे—इंडियन बैगर, इंडियन बैगर (भारतीय भिखमंगा) बहरहाल साधु को निराश लौटना पड़ा। किन्तु उन्होंने चमत्कार दिखलाने की ठान ली।

मेजर डिक साधु के चले जाने के बाद नौकरों को डांटते हुए बोले—"मूर्ख तुम लोगों ने मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया ?" नौकर पहले तो बन्दर की तरह खों-खों करने लगे। फिर कहा—उसको देखते ही हमारी सिट्टी गुम हो गई थी।

मेजर को तो अपने कुत्ते पर भी आश्चर्य था। उन्होंने सोचा कि क्या भारतीय साधु ऐसे भी होते हैं। जब मेजर ने यह घटना अपनी पत्नी को बतलाई तो वे बोलीं—आपको इतना क्रोध नहीं करना था। मैं ही उन्हें कुछ लाकर दे देती।

इस घटना को लगभग एक माह बीत गया। उस दिन जब सबेरे डिक उठे तो नौकर चाय लेकर ही नहीं आया। वे अन्दर गये। वहाँ देखा कि कोई भी नौकर नहीं है। वे हैरान हुए। अन्दर से एक नौकर चिल्लाया। "साहब इधर मत आना। इस मोहल्ले में प्लेग फैली है। इसलिए अन्य लोग भाग गये हैं।

आखिरकार उन्हें वह बंगला छोड़ना पड़ा। डाक बंगले पर पहुँचकर जब तीन चाय का आर्डर दिया तो नौकर चाय ले आया। जब चाय को मुंह से लगाया तो उसमें से मिट्टी के तेल की सी वास आई। तभी एक कप्तान स्मिथ ने आकर कहा—"आपको छावनी जाना पड़ेगा।" डिक ने कहा—हमने अभी कुछ भी नहीं खाया है। पहले खाना खा लें। कप्तान ने कहा—"आप चले जावें हम प्रबन्ध करके ला रहे हैं।"

मेजर साहब वहाँ पहुँच गये—नौकर ने बतलाया कि खाना तो ट्रक के टकराने से फैल गया।

कैप्टिन स्मिथ के कहने पर वे उसके घर गये। नौकर खाना लाते-लाते गिर पड़ा। सारा शोरबा डिक पर ऐसे फैल गया जैसे उनसे होली खेली है। कपड़े बदलकर वे फिर बैठे। नौकर फिर खाना लाया। भोजन खोला तो मारे दुर्गन्ध के उसे फेंकते ही बना। उन्हें वह रात पानी पीकर काटनी पड़ी।

श्रीमती डिक ने कहा— हम मन ही मन साधु से क्षमा क्यों नहीं माँग लें। डिक ने कहा—'उस साधारण व्यक्ति से हम माफी कैसे माँग सकते हैं?'

दूसरे दिन भोजन की तलाश में मेजर डिक परिवार सहित स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन मास्टर ने बताया—'प्लेग की वजह से यहाँ का होटल बन्द है। आप अगले स्टेशन पर चले जायें।' किन्तु दुर्भाग्य से वह गाड़ी भी निकल गई थी।

मेजर पुनः घर लौटे रास्ते में मिठाई ली। आगे पीपल के वृक्ष के नीचे वे रुके। मिठाई निकाली तो शौच की सी दुर्गन्ध आई। मिठाई फेंक दी गई।

तभी उस दिन वाले साधु कार की ओर आते दिखाई दिये। मेजर का घमंड चकनाचूर हो चुका था। साधु ने हँसकर कहा- 'मुझे दुःख है कि आप लोग परेशान हो गये हैं। आपको इस शहर में खाना नहीं मिलेगा। आप बाहर कहीं चले जावें।'

फिर साधु तीनों को लेकर अपनी कुटी पर आये। पत्तलें परोसी गई। शुद्ध शाकाहारी भोजन गर्म-गर्म परोसा गया। तीनों ने भर पेट भोजन किया। भोजन बनाने वाला कोई न था और न ही सामान था इसे देखकर मेजर आश्चर्य में पड़ गया।

भोजन के उपरान्त तीनों ने साधु से पैरों में पड़कर क्षमा माँगी।

●

धोखा न दें

प्राचीन काल में यूनान बड़ा विकसित देश था। लोग चैन का जीवन बिताते थे। किसी को कोई चिन्ता न थी। किन्तु हर जमाने में हर प्रकार लोग रहे हैं।

यूनान के ऐथेन्स नगर में एक युवक रहता था। वह घोड़े पर सवारी करने का बहुत शौकीन था। अतः उसके पास एक सुन्दर और बलिष्ठ घोड़ा था।

युवक का शत्रु उसके सुन्दर घोड़े से चिढ़ता था। वह उस घोड़े को कबाड़ना चाहता था। उसने घोड़े को उड़ाने के कई प्रयत्न किये। सभी प्रयत्न बेकार रहे। तब उसने चालाकी से घोड़ा लेने की ठानी।

घोड़े वाला युवक रोजाना, अपने घोड़े पर सवार होकर सैर को जाता था। अतः शत्रु ने धोखा देने की ठानी। उसे यह ज्ञात था कि युवक शाम को घूमने जाता है।

शत्रु युवक पहले ही बीमार बनकर रास्ते में पड़ गया। वह चीख-चीखकर अपने बीमार होने का वर्णन करने लगा। जब युवक उसके करीब आया तो वह बुरी तरह गिड़गिड़ाया और बोला "मुझे घोड़े पर बिठाकर ले चलो।"

घोड़े वाले युवक को दया आ गई। उसने उसे घोड़े पर बिठा दिया। और स्वयं पैदल चलने लगा। बस अब क्या था! शत्रु को सुनहरा अवसर मिल गया। वह घोड़े में एड़ लगाकर उसे भगा ले चला।

उदार युवक ने उस धूर्त को आवाज देकर रोका—भाई घोड़ा भले ही ले जाओ, पर एक मेरी बात सुनते जाओ। "शत्रु ने घोड़ा रोक लिया और बोला—शीघ्र कहो।

घोड़े वाला युवक बोला—बस इतना ही कहूँगा कि जिस प्रकार तुमने घोड़ा लिया है, उसकी चर्चा किसी से न करना। नहीं तो कोई वास्तविक बीमार होगा तो लोग उसकी भी सहायता नहीं करेंगे। इस प्रकार उसका अधिकार मारा जायेगा। शत्रु युवक शर्मिन्दा हुआ और घोड़ा लौटा दिया।

पाप न कमायें

एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपने घर के सामने एक सुन्दर बगीचा लगाया। ब्राह्मण अपना बचा हुआ समय उसी की देखभाल में लगाता। वह कभी खाद डालता तो कभी सिंचाई करता। परिश्रम का परिणाम सदैव ही अच्छा होता है। अतः उस ब्राह्मण का बगीचा भी सुन्दर फूलों से महक उठा। फलों के पौधे भी बढ़ने लगे।

एक दिन उसके बगीचे में एक गाय घुस गई। और उसने अमरूद के हरे-भरे पत्तों में मुंह डाल दिया। जब खर-खर की आवाज सुनी तो ब्राह्मण लाठी लेकर आया। वह लाठी से गाय पर टूट पड़ा। गाय के काफी चोट लगी। अतः वह वहीं गिरकर मर गई।

अब ब्राह्मण के सिर गौ हत्या का पाप लग गया। इसलिए उसे प्रायश्चित करना चाहिए था। लेकिन उसने अपने मन को यूं समझाने की कोशिश की—"मैं अपराधी नहीं हूं। क्योंकि दायें हाथ का स्वामी इन्द्र होता है। यह गाय भी दायें हाथ से मरी है। अतः इन्द्र पापी हुआ।" जो भीड़ इकट्ठी हो गई थी। वह इस बेतुकी बात को न मानी।

ब्राह्मण की अज्ञानता इन्द्र को बुरी लगी। इन्द्र ने एक वृद्ध का रूप बनाया और उस बगीचे के सामने से पथिक के रूप में निकले। वे बगीचे को देखकर प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे जरूर यहाँ कोई परोपकारी रहता है। अपनी प्रशसा सुनकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। वह उस वृद्ध व्यक्ति को बगीचे में अन्दर

ले गया। सभी पौधे दिखलाये। थोड़े पुष्प भी पथिक को भेंट किये।

अन्त में वृद्ध ने पूछा—'यह बगीचा किसने लगाया है। ब्राह्मण प्रसन्न मुद्रा में बोला—मैंने ही अपने हाथों इन पेड़-पौधों की सेवा की है।'

तभी इन्द्र ने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया। ब्राह्मण घबरा गया। इन्द्र बोले—'जिन हाथों से तुमने गाय की हत्या की है। उन्हीं हाथो से बगीचा लगाया है। पर तुम यह जानते हो कि गाय मारने का पाप मैं उठाऊँ और बगीचे का श्रेय मात्र तुम्हें मिले। ब्राह्मण का सिर शर्म के मारे नीचे झुक गया।

●

निश्छल प्रेम

एक बार स्वामी विवेकानन्द चीन घूमने के लिए गये। उन दिनों चीन में कुछ शहरों को छोड़कर शेष स्थानों पर पाबन्दी लगी थी। अगर भूल से कोई विदेशी वहाँ पहुँच भी जाता तो चीनी मारने पर उतारू हो जाते।

चीन घूमने के समय स्वामीजी की इच्छा किसी गाँव में जाने की हुई। अन्य दो जर्मन पर्यटक भी गाँव घूमना चाहते थे। किन्तु उनमें इतना साहस नहीं था। अतः उनकी हिम्मत नहीं हो रही थी। उन लोगों ने यह बात स्वामीजी से कही। स्वामीजी ने समझाया—"सारी मनुष्य जाति एक है। यदि हम सच्चे हृदय से उन लोगों के पास जायेंगे तो वे हमें मारने के बजाय प्रेम से ही मिलेंगे।"

स्वामीजी की वाणी में जादू था। अतः जर्मन पर्यटक भी उनके साथ चल पड़े। दुभाषिया उनके लिए तैयार नहीं हो रहा था। जब स्वामीजी नहीं रुके वह भी पीछे-पीछे हो लिया। किन्तु उसे डर था कि कहीं चीनी उसे मार न दें।

स्वामीजी ने चीनियों के विषय में जो कुछ सुना था, वह सच निकला। गाँव वाले इन विदेशियों को देखकर लाठी लेकर मारने दौड़े। स्वामीजी ने उनकी ओर स्नेह भरी दृष्टि डाली और कहा—"क्या आप लोग अपने भाइयों से प्रेम नहीं करते?"

दुभाषिये ने यही प्रश्न उनकी भाषा में ग्रामीणों से पूछा—

चीनी अपनी करतूत पर मारे शर्म के झुक गये। उन्होंने लाठियाँ फेंक दीं। फिर वे स्वामीजी के सत्कार में जुट गये।

इस बात को देखकर एक जर्मन पर्यटक बोला—"सच है स्वामीजी यदि आप जैसा निश्छल प्रेम, सारे संसार के लोगों में हो जाये तो धरती कष्टमुक्त हो सकती है।

स्वामीजी मात्र मुस्करा दिये। गाँव घूम चुकने के बाद चीनी उन्हें छोड़ने के लिए काफी दूर सड़क तक आये।

अच्छाईयाँ

उन दिनों पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह का शासन था। महाराजा रणजीतसिंह बड़े न्यायप्रिय महाराजा थे।

एक बार वे एमन बुर्ज पर बैठे हुये भगवान का जाप करते माला फेर रहे थे। महाराजा के पास ही फकीर अजीजुद्दीन भी बैठे थे।

महाराजा रणजीतसिंह हिन्दु धर्म की परम्परा के अनुसार मनकों को अन्दर की ओर फेर रहे थे और फकीर साहब मुस्लिम मान्यता के अनुसार बाहर की ओर फेर रहे थे।

अचानक ही महाराजा को न जाने क्या सूझा कि वे फकीर साहब से पूछ बैठे—"शाह साहब ! मन के अन्दर की ओर फेरने चाहिये या बाहर की ओर।"

महाराजा की बात सुनकर शाह फकीर साहब बड़ी मुश्किल में फँस गये क्योंकि यदि वे अन्दर की ओर की बात कहते हैं तो बात धर्म के विरुद्ध होती है और यदि बाहर की ओर कहते हैं तो महाराज के क्रोधित हो जाने का भय था।

लेकिन फकीर साहब भी पहुँचे हुए थे। घाट-घाट का पानी पिए हुए। साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे इसी गरज से वे कहने लगे—"महाराज ! माला फेरने के दो उद्देश्य होते हैं। एक तो अपने दुर्गुणों को बाहर निकालना तथा दूसरा

अच्छाइयों को ग्रहण करना । महाराज को सदैव अच्छी योजनाओं का विचार रहता है अतः आप मनके अन्दर की ओर फेरते हैं और मैं अपनी मलिनताओं को बाहर की ओर फेंकता हूँ ।"

फकीर साहब की बात को सुनकर न केवल महाराजा को ही सन्तोष हुआ बल्कि वे उनके उत्तर से चकित रह गए ।

★

सच्ची देश भक्ति

झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई का नाम तो सभी जानते ही हैं। जब लक्ष्मीबाई का सब कुछ नष्ट हो चुका—किले की दीवारें टूटने लगीं—गिने चुने सैनिक शेष रह गये तब विचार विमर्श हुआ कि क्या किया जाना चाहिये ?

प्रश्न वाकई बड़ा जटिल था। क्योंकि अँग्रेजों तक जरा सी भी सूचना पहुँच जाती तो महारानी लक्ष्मीबाई के पकड़े जाने की पूरी-पूरी संभावना थी।

बहुत विचार विनिमय के बाद इसका उत्तरदायित्व एक महिला सिपाही ने अपने कंधों पर लिया।

योजना के अनुसार महारानी लक्ष्मीबाई को रात के अँधेरे में कालपी की ओर भेज दिया गया। ठीक उसी वक्त वह महिला सिपाही महारानी का वेष धारण करके अँग्रेजों की छावनी में जा पहुँची।

महिला सिपाही ने अँग्रेजों से कहा—"मैं लक्ष्मीबाई हूँ, मुझे गिरफ्तार करो।"

तमाम अँग्रेज अधिकारी स्तम्भित रह गये। भला वह रण चण्डी अपने आप समर्पण करने कैसे आ गई ?

काफी विचार विमर्श के बाद उस महिला सिपाही को गिरफ्तार कर लिया गया। पहँचानने वाले बुलाये गए। उनमें एक गद्दार भी था जिसने कह दिया—"यह रानी नहीं है—वह तो शहर छोड़कर भाग गई है।"

महिला सिपाही उत्तेजित होकर चिल्ला-चिल्ला कर कहने

लगी—'मैं ही लक्ष्मीबाई हूँ।' सबने कहा यह तो पागल हो गई है ?

अँग्रेजों ने वास्तविकता की जाँच करवाई। सत्य का पता भी चल गया। अँग्रेज सेनापति ने कहा—"यदि भारत की एक प्रतिशत महिलायें भी इस प्रकार की हों तो हमें सात दिन में भारत छोड़ना पड़ेगा।'

जब तक यह महिला इनको यहाँ अटकाए रही महारानी तब तक सुरक्षित कालपी जा पहुँची। उस महिला सिपाही का उद्देश्य यही था। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की। वह एक हरिजन महिला थी। जिसका नाम था—झलकारी। एक सच्ची देश भक्त।

लोभ का फल

पुराने जमाने में एक गाँव में एक दामोदर नाम के सेठ रहते थे। वे बड़े लोभी थे।

एक बार सेठ दामोदर की इच्छा हुई कि किसी ब्राह्मण को भोजन करा दिया जावे लेकिन ब्राह्मण कम खाने वाला हो। सेठजी जितने मालबार थे उतने ही लोभी भी थे।

एक दिन वे अपने गाँव के एक ब्राह्मण से बातचीत कर रहे थे। बातों ही बातों में सेठजी ने उस ब्राह्मण से पूछ लिया— "आप कितना खाना खाते हैं ?"

ब्राह्मण ने कहा—' एक छटांक।"

ब्राह्मण की बात सुनकर सेठजी बहुत खुश हुए और उन्हें तुरन्त ही न्योता देते हुए कहा— 'ऐसा है पंडित जी "मैं तो कल बाहर सौदा तुलाने जाऊँगा आप घर जाकर भोजन कर आवें।"

अपनी बात सेठजी के घर आकर सेठानी से कही—पंडित जी आवें तो भोजन कराके दक्षिणा दे देना।"

सेठजी सौदा तुलाने चले गये। पीछे से पंडित जी जीमने गये तो सेठानी ने उनकी बड़ी आवभगत की। वह सेठजी की तरह लोभी न थी। जीमने के बाद जब दक्षिणा की बात चली तो पण्डितजी ने कहा—"पाँच मन आटा, दो मन चावल, एक मन शक्कर, बीस किलो घी, पाँच सेर नमक तथा दो सौ रुपये फाफी होंगे।"

सेठानी ने पंडित जी की इच्छानुसार सब कुछ दे दिया। घर आकर पंडित जी ने पण्डितानी से कहा कि जब सेठ इधर आवें तो बहाना करके रोने लगना।

गाँव को सेठ तील तुला कर घर आये। सेठानी ने जब सब बात बतलाई तो तो वे घबराते हुए पण्डित जी के घर आये। वहाँ पण्डितानी को रोते पाया। पण्डितानी ने कहा—"आपके यहाँ जीमने में जाने क्या दे दिया कि पण्डितजी बीमार हो गये।"

अब तो सेठजी और भी घबराए। उन्होंने पण्डितानी को सौ रुपए और निकाल कर देते हुए कहा—'हमारे घर जीमने की बात किसी से न कहना और रुपये भिजया दूंगा।' लोभ के फल के विवश सेठजी घबराते हुए घर लौट आए।

★

अच्छा मित्र

एक जंगल में पीपल का एक विशाल पेड़ था। उस पर अनेकों पक्षी बसेरा किया करते थे। एक दिन एक शिकारी उधर आया। उसने पीपल के पेड़ के नीचे चावल के कुछ दाने डाल दिये और उनके ऊपर अपना जाल बिछा दिया स्वयं एक झाड़ी के पीछे छिप गया।

उसी पीपल के पेड़ पर एक वृद्ध कौवा रहता था। शिकारी को यह कार्य करते देख वह उसकी चालाकी समझ गया। उसने पेड़ पर बैठे सभी पक्षियों से कहा "यदि इन दानों के पास जो जायेगा वह जाल में फँस जायेगा।" पक्षियों ने उसका कहना मान लिया।

तभी कहीं से उड़ता हुआ एक कबूतरों का दल आया। कबूतरों के दल का मुखिया चित्रग्रीव नामक कबूतर था। उसने अपने साथियों से कहा, जो इन दानों के पास जायेगा वह जाल में फँस जायेगा, कबूतर अधिक भूखे थे। अतः उन्होंने अपने मुखिया की बात नहीं मानी जैसे ही वे चावलों के पास गये और जाल में फँस गये।

चित्रग्रीव कबूतरों से बोला साथियो घबढ़ाने से काम नहीं चलता है, जैसे-जैसे मैं इशारा करता चलूं वैसे ही करते चलो। चित्रग्रीव ने कहा तुम सब एक साथ जोर लगाकर एक ही दिशा में उड़ना। चित्रग्रीव का इशारा पाते ही सभी कबूतर जाल सहित उड़ गये।

यह देखकर शिकारी दंग रह गया तथा निराश होकर अपने घर लौट गया।

चित्रग्रीव कबूतरों को अपने मित्र हिरण्यक चूहे के पास ले गया, कबूतरों को मुसीबत में देखकर चूहे ने अपने साथियों की मदद से पूरे जाल को काट दिया। सभी कबूतर शिकारी के जाल से मुक्त हो गये। ●

चालाक बन्दर

कुछ दिन पहिले की बात है। नदी के किनारे एक शहर था। शहर का नाम था 'विशाल नगर।' विशाल नगर में एक सिनेमा घर था। बन्दर सिनेमा-घर में आकर बड़ा ऊधम मचाते थे। सिनेमा का मालिक बन्दरों से बड़ा परेशान था।

उसने बन्दरों को तंग करने के लिए एक उपाय सोचा। उसने सिनेमा-घर के ऊपर एक कुर्सी बनवाई। कुर्सी के नीचे एक मोटा बेंत लगवाया। कुर्सी का मुँह नदी की ओर रखा।

बन्दर बड़े नकलची होते हैं। वे आदमी की नकल बहुत करते हैं। बन्दर रोज उस कुर्सी पर आकर बैठते थे। उनके बैठने से बेंत दब जाता था। फिर वह बेंत उछलता था। उसके उछलने से कुर्सी भी जोर से उछलती थी। बैठने वाला बन्दर, सीधा नदी में जाकर गिरता था। इसी तरह एक-दो बन्दर रोज नदी में गिरा करते थे।

एक बन्दर को कहीं से कुछ पैसे मिल गये। वह कहीं से एक छड़ी भी उठा लाया।

एक दिन वह बन्दर बेंत लेकर आया। वह टिकिट घर की खिड़की पर गया। उसने एक टिकिट खरीदा। वह उसी कुर्सी पर जा बैठा। उसके बैठते ही कुर्सी उछली। कुर्सी के उछलते ही वह नदी में जा गिरा। उसी समय नदी में उसे एक मगर दीखा। उसने बन्दर को खाने के लिए मुँह फैलाया।

बन्दर के हाथ में छड़ी थी। उसने झट छड़ी को मगर के मुँह में अड़ा दिया। मगर का मुँह खुला रह गया। मगर घबड़ा गया। बन्दर उछल कर उसकी पीठ पर जा बैठा। मगर किनारे की ओर भागा। किनारे पर पहुँचते ही बन्दर उछला। वह जमीन पर खड़ा हो गया। फिर वह भाग गया। मगर मुँह फैलाये पानी में घुस गया। मालूम नहीं बेचारे की क्या दशा हुई!

बुराई का बदला

रतन ने एक कुत्ता पाला। कुत्ते का नाम था मोती। मोती बड़ा सीधा था। वह कभी किसी को काटता न था। वह कभी किसी को देख कर भौंकता न था! मुहल्ले के सभी बच्चे उसे प्यार करते थे। दिन भर बच्चे उसके साथ खेला करते थे। सभी बच्चे मोती को प्यारे थे। सभी बच्चों को मोती प्यारा था।

एक दिन मोती सड़क पर पड़ा हुआ था। एक साहब हैट लगाकर उधर से निकले। मोती चुप-चाप था। मोती भौंका नहीं। मोती साहब के पीछे नहीं दौड़ा। मोती ने साहब का कुछ नहीं बिगाड़ा। साहब ने मोती को एक ठोकर मारी। मोती को चोट लगी। वह चिल्ला कर भागा। मोती को बड़ा गुस्सा आया। मोती चाहता तो साहब को दौड़ कर काट लेता। पर मोती कुछ नहीं बोला। मोती ने साहब को अच्छी तरह पहिचान लिया।

एक दिन वही साहब फिर उधर से निकले। मोती ने साहब को देख लिया। मोती साहब को पहिचान गया।

मोती झट कोठे पर चढ़ गया। एक टोकनी में कूड़ा रखा था। मोती ने टोकनी उठाई। साहब कोठे के सामने पहुँचे। मोती ने टोकनी का कूड़ा साहब के ऊपर उड़ेल दिया।

साहब के सब कपड़े खराब हो गये। साहब ने ऊपर देखा। साहब ने मोती को पहिचाना। साहब झेंप गए। साहब कुछ न कह सके।

साहब को अपने किए का फल मिल गया। साहब चुपचाप सिर झुकाए चले गए।